

प्रकृति भी मुखर हो उठी



मुनिज्ञान



प्रकाशक

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, ब्रीकानेर (राज.) ३३४००१

प्रकृति भी मुखर हो उठी



मुनिज्ञान



प्रथम संस्करण १९६७

११०० प्रतियां



मूल्य : ७ रुपये मात्र



प्रकाशक :

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, बीकानेर (राज.)



मुद्रक :

जैन आर्ट प्रेस

समता भवन, बीकानेर (राज.)

“प्रकाशकीय”

साधुमार्ग की इस पवित्र पावन धारा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये बड़े-बड़े आचार्यों ने अपना-अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। भगवान् महावीर के बाद अनेक बार आगमिक घरातल पर क्रांति का प्रसंग आया है। जिसका उद्देश्य श्रमण संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखने का रहा। ऐसी क्रान्ति धारा में क्रियोद्धारक, महान् आचार्य श्री हुक्मीचंदजी म. सा. का नाम विशेष रूप से उभर कर सामने आता है। तत्कालीन युग में जहां शिथिलाचार व्यापक तौर पर फैलता जा रहा था। शुद्ध साधुत्व की स्थिति विरल ही परिलक्षित होती थी, बड़े-र साधु भी मठों की तरह उपाश्रयों में अपना स्थान जमाये हुए थे। चेलों के पीछे साधुता बिखरती जा रही थी। ऐसे युग में आचार्य श्री हुक्मीचंदजी म. सा. ने उपदेशों से ही नहीं अपितु अपने विशुद्ध एवं उत्कृष्ट संयममय जीवन से जन मानस को प्रभावित किया। आचार्य प्रवर केवल तपस्वी अथवा संयमी ही नहीं थे वरन् श्रमण संस्कृति के गहरे आगमिक अध्येता श्रुतधर थे। आपके जीवन का ही प्रभाव था कि हजारों स्त्री पुरुष आपके चरण सान्निध्य को पाने के लिए लालायित रहते थे। ‘तिन्नाणं तारयाणं’ के आदर्श आचार्य प्रवर ने योग्य मुमुक्षुओं को दीक्षित किया और जो देशव्रती बनना चाहते थे, उन्हें देशव्रती बनाया। इस प्रकार सहज रूप से ही चतुर्विध संघ का प्रवर्तन हो गया।

समुद्र में जिस प्रकार दूर तक गंगा का पाट दिखलाई देता है, वैसे ही जैन धर्म के समुद्र में आचार्य प्रवर की यह धारा एकदम अलग-थलग सी परिलक्षित होने लगी। यहां से

फिर साधुमार्ग में एक क्रान्ति घटित हुई। जिस क्रान्ति की धारा पश्चात्पूर्वी आचार्यों से निरन्तर आगे बढ़ी। आज हमें परम प्रसन्नता है कि समता विभूति, विद्वद्, शिरोमणि, जिनशासन प्रद्योतक, धर्मपाल प्रतिबोधक आचार्य श्री नानेश के सान्निध्य की हमें प्राप्ति हुई है। श्रद्धेय आचार्य प्रवर का व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व अनूठा एवं महनीय है। आपने एक साथ पच्चीस-पच्चीस दीक्षाएं देकर सैकड़ों वर्षों के अतीत के इतिहास को प्रत्यक्ष कर दिखाया है। ऐसी एक नहीं अनेक क्रान्तियां आचार्य प्रवर के सान्निध्य में घटित हो रही हैं। विशुद्ध संयम पालन के साथ आपके सान्निध्य में आपके शिष्य-शिष्या रूप साधु-साध्वी वर्ग ने सम्यक् ज्ञान विज्ञान की दिशा में भी आश्चर्य जनक विकास किया है।

शान्त क्रान्ति के अग्रदूत स्वर्गीय आचार्य श्री गणेश-लालजी म. सा. की स्मृति में श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ ने श्री गणेश जैन ज्ञान भण्डार की स्थापना की। ज्ञान भण्डार में अनेकानेक प्रकाशित एवं हस्तलिखित ग्रन्थों का संग्रह हुआ है। हस्तलिखित अप्रकाशित ग्रन्थों का संचयन कर उन्हें भी अ. भा. सा. जैन साहित्य समिति सर्वजन-हितार्थ प्रकाशित कर रही है। इसी संकल्प की क्रियान्विति में इसे भी श्री गणेश जैन ज्ञान भण्डार से प्राप्त कर प्रकाशित करने में संघ हार्दिक सन्तुष्टि का अनुभव कर रहा है।

प्रस्तुत पुस्तक का सुन्दर प्रणयन आचार्य प्रवर के अन्तेवासी सुशिष्य विद्वद्ध्य श्रीजस्वी प्रवक्ता श्री ज्ञानमुनिजी म. सा. ने किया है। श्री ज्ञानमुनिजी ने मात्र १४ वर्ष की

वय में आचार्य-गुरुदेव के सान्निध्य में दीक्षित होकर १६ वर्ष की वय में परीक्षा बोर्ड की सम्पूर्ण साधुमार्गी परीक्षाओं को प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर परीक्षाबोर्ड में एक कीर्तिमान स्थापित किया है। मुनिश्री प्रखर मेधा के धनी होने के साथ ही प्रखर व्याख्याता है।

मुनिश्री की प्रखर मेधा ने साहित्य की विभिन्नविधाओं में साहित्य-रचनाकर साहित्य श्रो में विशिष्ट अभिवृद्धि की है। आपश्री ने मुक्तक-संगीत-चिन्तन-इतिहास-उपन्यास-कविता आगम आदि अनेक विध साहित्य का सर्जन एवं सम्पादन किया है। आपकी सम्यक् ज्ञान के साथ तप सयम की आराधना आचार्य-प्रवर के सान्निध्य में सतत प्रगतिशील है। हमें आपश्री के व्यक्तित्व-कृतित्व के प्रति गौरव है।

प्रस्तुत 'प्रकृति भी मुखर हो उठी' नामक पुस्तक में मुनिश्री ने अपने प्रखर चिन्तन के माध्यम से प्रकृतिगत अवस्थाओं को कथात्मक शैली में प्रस्तुत करने के साथ ही मानव को मार्मिक प्रेरणा भी दी है। इसमें जहां पाठक की कथा-लिप्सा पूर्ण होती है वहां साथ-साथ में आत्मा के गुणों का भी ज्ञान होने लगता है।

पुस्तक लघु होते हुए भी विशिष्ट एवं उपयोगी है। आशा है पाठक इससे लाभान्वित होंगे। □

चुन्नीलाल मेहता धनराज बेताला गुमानमल चोरड़िया

अध्यक्ष

मन्त्री

संयोजक

अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ

साहित्य समिति

प्रकृति भी सुखर हो उठी

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से मानव के उद्भव एवं विकास के विषय में सोचा जाय तो ज्ञात होगा कि आदिमकालीन युग में मानव पशु की तरह जीवन व्यतीत करता था। उस समय उसके पास रहने के लिये मकान, खाने के लिये स्वादिष्ट भोजन एवं पहनने के लिये कपड़े नहीं थे। जंगलो में इधर से उधर परिभ्रमण किया करता था। आज की तरह का यांत्रिकी विकास उस समय नहीं था। जैन-दर्शन की दृष्टि से आदिमकालीन युग, यौगलिक काल के रूप में प्रतिपादित हुआ है।

मानव अपने चिन्तनशील मस्तिष्क का उपयोग तथा आदिमकालीन युग की परिधियों को पार कर विकास के सोपानों पर निरन्तर आगे बढ़ता चला गया और आज भौतिक दृष्टि से बहुत कुछ समृद्ध बन चुका है। पर इस विकास के पीछे वह नेच्युरल-प्राकृतिक जीवन से पिछड़ा ही नहीं अपितु बहुत दूर चला गया। आज तो अधिक से अधिक अप्राकृतिक प्रायोगिक जीवन में ही जी रहा है। खान-पान, रहन-सहन आदि सभी कार्यों में विभाव का ही रूप विशेष रूप से उभरता चला जा रहा है। इन वैभाविक परिणतियों के कारण ही सुखी जीवन से वह बराबर वंचित रह रहा है। शांत और सुखी बनने के लिये हमें विकासशील युग के साथ ही प्राकृतिक जीवन में जीना होगा। प्राकृतिक चिकित्सा को भी इसीलिये महत्त्व दिया गया है। आयुर्वेदिक एवं

ऐलोपैथिक चिकित्सा से जो रोग शांत नहीं होता, उसे प्राकृतिक चिकित्सा जड़मूल से उखाड़ कर फैंक देती है, क्योंकि मानव का रोग जहाँ से प्रारम्भ हुआ है, प्राकृतिक चिकित्सा उसे वहीं ले जाकर खड़ा कर संशोधित करने का प्रयास करती है ।

उत्पत्ति के साथ ही मानव में कषाय एवं विषयों का उभार बहुत कम प्रतीत होता है पर ज्यों-ज्यों वह दुनियाँ के रंगमंच पर बढने लगता है, त्यों-त्यों उसमें विकृतियाँ घेर करती चली जाती है, क्योंकि उसके आसपास का परिकर उसे लगभग अप्राकृतिक एवं विषयो से भरा मिलता है । वर्तमान के इस वातावरण को देखते हुए कहते हैं कि सदियों से मौन रहने वाली प्रकृति भी मुखर हो उठी । उसे अपनी गोद में जीने वाले सर्वश्रेष्ठ मानव के भीतर प्रवेश करने वाली विकृति कतई सहन नहीं हुई और वह भिन्न-२ तरीके से मानव को स्वभावस्थ करने के लिये समझाने लगी । प्रकृति के इस मौख्य को कल्पना के आधार पर प्रस्तुत करने का प्रयास इस 'प्रकृति भी मुखर हो उठी' के अन्दर किया गया है । चिन्तनशील मानव को सुख की सच्ची सुवास प्राप्त करने के लिये स्वाभावस्थ होना ही होगा । सर्प कितना भी टेढ़ा-मेढ़ा चल ले, पर बिल में प्रवेश करने के लिये तो उसे सीधा ही होना होगा । मानव ने भी शान्ति को प्राप्त करने के लिये बहुत दौड़ लगा ली । भिन्न-भिन्न तरीके से बहुत प्रयास कर लिये, फिर भी इच्छित शांति की उपलब्धि तो नहीं हुई वरन् वह और अधिक अशान्त एवं उद्विग्न बनता चला गया । अतः मानव को शांति पाने के लिये अप्राकृतिक टेढ़ापन छोड़ना होगा ।

जितने भी अतीत में महापुरुष हुए, लगभग सभी ने अपनी आत्म-शक्ति को जागृत करने के लिये अप्राकृतिक

परिकर से हटकर प्राकृतिक क्षेत्र में रहना पसन्द किया था अर्थात् भौतिकता की आसक्ति से हटकर अध्यात्म में रमण किया था इसलिये परम शांति की अनुभूति की ।

पर बड़े-२ बंगलों में रईसों की तरह जीने वाला इन्सान अपने दुःखों का अन्त नहीं कर सका । अतः शांति को प्राप्त करने के लिये प्रकृति की मुखरता को सुनने का प्रयास करें और उसे जीवन में स्थान दें ताकि हमारी आत्मा का प्राकृतिक रूप उभर सकें ।

समता-विभूति, अनन्त आराध्य, समीक्षण योगी, अनल्प उपकारीगुरुदेव आचार्यभगवन् श्रीनानेश का पतित-पावन कृपा वर्षण एवं सुखद सान्निध्य, मुझे साधना में सतत गति दे रहा है । साथ ही मुनिकुमारों की ममतामयी माता, शासन प्रभावक, परम उपकारी इन्द्रचन्दजी म.सा. के मातृ वात्सल्य एवं उपकारों को भी विस्मृत नहीं किया जा सकता है । दोनों महापुरुषों के प्रति असीम श्रद्धा को संजोए, प्रस्तुत है—

प्रकृति भी मुखर हो उठी

२६-८-८६ शुक्रवार

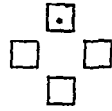
मुनिज्ञान

महावीर भवन नया बास

ब्यावर (राज.)



समर्पण



जिनके सम्यक्
साधनाशील
उत्तुङ्ग-गिरि से
प्रवाहित
समता निर्झर में
आप्लावित हो
अमरता के
पथ का
पथिक बना
उन्हीं
अनन्त-अनन्त आराध्य
गुरुदेव
आचार्य श्री नानेश
को

मुनिज्ञान

महावीर भवन, नया बास
व्यावर (राज.)

२६-५-५६

शुक्रवार

मर्यादा ही उत्तम आचरण का सुरक्षा कवच है, प्रभु महावीर का संदेश है कि आचरण की धारा सम्यक्ज्ञान के चट्टानी तटबन्धों में ही मर्यादित रहनी चाहिये ।

आचार्य स्वर्गीय गुरुदेव श्री गणेशीलालजी म. सा. ने श्रमण संस्कृति की सुस्थिति एवं उन्नयन के लिये शांत-क्रान्ति का अभियान चलाया, इस अभियान को ओजस् प्रदान करना साधुवर्ग का दायित्व है, इसके लिए साधुवर्ग को जहां साधना के पथ पर अविचल रूप से आरूढ़ रहना है वहीं अपनी साधनागत अनुभूतियों की अभिव्यक्ति द्वारा सामान्य जन के लिए सुदृढ़ साधना सेतु का निर्माण भी करते चलना है । “शान्त-क्रान्ति” आत्म-साधना से ही परात्म-साधना के उदय का अभियान है जो आत्म पक्ष, परात्म-पक्ष एवं परमात्म पक्ष तीनों को उजागर करने में सक्षम है । साधु समाज ने विगत पच्चीस वर्षों में सम्यक् ज्ञानार्जन की दिशा में अच्छी दूरी तय की है, रथ बढ़ रहा है, पथ भी प्रशस्त हो रहा है.....।

—आचार्य श्री नानेश’

यत्किञ्चित्

“प्रकृति भी मुखर हो उठी” पुस्तक को मैंने आद्यो-पान्त्य श्रवण किया। कलेवर की दृष्टि से कृशकाय होने पर भी इसमें उल्लिखित संवाद ऐसे हैं जो जीवन को समग्रता, सार्थकता एवं पुनीतता प्रदान करने का सामर्थ्य रखते हैं। मानवजीवन की दुर्बलताओं को उजागर करके निर्दोष बनाने की एवं सर्वोपरि अभ्युदय की दिशा का निर्देश करते हैं।

ये संवाद आबालवृद्ध जैन-जैनेतर सभी धर्म के अनुयायियों; सभी वर्गों और वर्णों के विचारवान जनों के लिए समान रूप से उपयोगी है—उपकारी है। इनमें नैतिकता और धार्मिकता का अद्भुत समन्वय है। लेखक का दृष्टिकोण जन-साधारण को ऐसा संदेश देने का रहा है, जिससे देवदुर्लभ यह मानवजीवन दिव्य और भव्य रूप में पलट सके। यही कारण है कि भाषा को अलकृत बनाने के भ्रमे में न पड़कर अतीव सरल, सुबोध एवं सामान्य से सामान्य योग्यता वाले पाठकों की समझ में आ जाने वाली भाषा का प्रयोग किया गया है।

पुस्तक के लेखक श्री ज्ञानमुनिजी महाराज सार्थकनामा है। अल्पवय में ही उन्होंने संस्कृत-प्राकृत आदि भाषाओं और दर्शन आगम आदि विषयों का गहरा अध्ययन किया है। यही नहीं उनकी प्रज्ञा कुशाग्र है, वे नैसर्गिक प्रतिभा से

सम्पन्न हैं । प्रस्तुत पुस्तक इस तथ्य की साक्षी है कि उन्होंने प्रकृति का भी गम्भीर रूप में अवलोकन, चिन्तन और मनन किया है । वे साधारण-सी प्रतीत होने वाली घटना से कितना महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकालते हैं और पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं, यह देखकर किसे सुखद आश्चर्य न होगा वही सत्पुरुष ऐसा कर सकते हैं जो ज्ञान के साथ संयम की साधना में भी निरन्तर निरत रहते हैं ।

इस पुस्तक को प्रस्तुत करने के लिए श्री ज्ञानमुनिजी महाराज बघाई के पात्र हैं । आशा है भविष्य में भी मुनिश्री की प्रकृष्ट प्रतिभा अन्यान्य ग्रन्थ रत्नों से साहित्य-भण्डार को समृद्ध बनाएगी ।

—शोभाचन्द्र भारिल्ल

चीर संवत् २५१३
चम्पानगर, ब्यावर



अनुक्रमणिका

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	कुसुम और कंटक	१
२.	मिट्टी और कुंभकार	२
३.	घरती का आज्ञाकारी पुत्र	५
४.	लोहा और लुहार	६
५.	मूर्ति और शैतान	८
६.	कलम और कागज	९
७.	क्रोध और मान	१०
८.	ईश्वर और आदमी	११
९.	नर और वानर	१२
१०.	नदी और शैतान	१३
११.	बादल और हवा	१४
१२.	कीचड़ और कमल	१६
१३.	दांत और जीभ	१७
१४.	प्रकाश और अंधेरा	१८
१५.	चेहरा और दर्पण	१९
१६.	दारू और दारूडिया	२०
१७.	धोबी और कपड़ा	२१
१८.	आम्र वृक्ष और खजूर वृक्ष	२२

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
१९.	ताला और चाबी	२३
२०.	फूल और माली	२४
२१.	कौआ और आदमी	२५
२२.	घरती और अंबर	२६
२३.	दूध और पानी	२८
२४.	पत्थर और नदी	२९
२५.	चोर और तिजोरी	३०
२६.	खरगोश और शिकारी	३१
२७.	हल और धरती	३२
२८.	लोहा और आग	३३
२९.	शेर का मंतव्य	३४
३०.	नदी और समुद्र	३५
३१.	गैस-सिलेण्डर	३६
३२.	हीरे का मूल्यांकन	३८
३३.	गुड मोर्निंग ही गुड इवनिंग है	४०
३४.	हाथी और कुत्ता	४२
३५.	ना समझ कौन ?	४४
३६.	चातक शिशु का निश्चय	४६
३७.	ड्राइवर और गाड़ी	४८
३८.	हीटर और कूलर	४९
३९.	संघर्ष नदी और समुद्र का	५१
४०.	संगति किसकी करें ?	५३
४१.	दीपक और भास्कर	५४
४२.	नर्तकी और सितार	५६
४३.	शेर और कुत्ता	५७

क्रमांक	विषय	दृष्ट संख्या
४४.	पतंग और बालक	५६
४५.	मेंढक की बातचीत	६१
४६.	घट और पानी	६३
४७.	कछुए की वह रात	६५
४८.	इन्सान और फूल	६७
४९.	बीज का वृक्ष	६९
५०.	कीचड़ और कंजूस	७१
५१.	वंश-दल का घर्षण	७३
५२.	पतंगिये की भिनभिनाहट	७५
५३.	मकड़ी का जाल	७७
५४.	सर्प का संदेश	८०
५५.	मूर्खता किसकी ?	८२
५६.	चिड़िया का संदेश	८४
५७.	गिलहरी का अथक परिश्रम	८६
५८.	मूषक का स्वार्थ	८९
५९.	कुत्ते की आदत	९२
६०.	कुत्ते की नासमझी	९४
६१.	हवा और बादल का संघर्ष	९६
६२.	चन्दन वृक्ष और सर्प	९८
६३.	इलेक्शन-सीरमण्डल का	१०१
६४.	गधे की पुकार	१०४
६५.	सृष्टि का विचित्र प्राणी	१०७
६६.	पाषाण की महत्ता	१०९

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
६७.	अपात्र को शिक्षा	११२
६८.	दीपक का धुआं काला क्यों ?	११४
६९.	वार्ता: चलनी और सुई की	११६
७०.	लोहा, सोना कैसे बने ?	११८
७१.	स्वार्थ आदमी का	१२०



(१)

कुसुम और कंटक

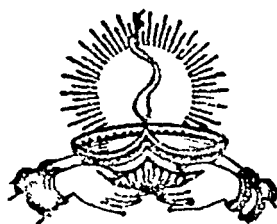
फूल का सहवासी काटा, फूल का अधिकाधिक सम्मान देखकर ईर्ष्याविश चीख उठा—क्यों, लोग तुम्हे ही पूछते हैं, ऐसी क्या करामात है तुममें कि दूर दूर से मनुष्य ही नहीं पशु-पक्षी भी खींचे चले आते हैं और तुम्हे अपनाने के लिए लालायित रहते हैं। लेकिन मुझे तो अपनाने की बात तो दूर रही छूना भी पसंद नहीं करते। मुझसे इतनी अधिक छुआछूत रखते हैं कि जब वे तुम्हे लेने के लिये आते हैं तो बड़े सतर्क रहते हैं। कहीं मैं उनको छू न जाऊँ। आखिर क्यों, मेरे से इतना भेदभाव रखा जाता है ?

मद मंद सुगंध बिखेरते हुए—मुस्कराते हुए फूल ने कहा—दोस्त ! लोग इसलिए मुझे लेने के लिए आते हैं कि मैं उन्हें भीनी-भीनी सुगंध देता हूँ। उन्हें प्रफुल्लता एवं ताजगी से भर देता हूँ। भले वे मुझको तोड़कर अलग भी कर दे, मैं मुर्झा भी जाऊँ तो भी जीवन के अन्तिम क्षणों तक उन्हें सुगंध ही सुगंध देता रहता हूँ इसलिये लोग मुझे चाहते हैं। जब तुम भी अपने जीवन में परिवर्तन कर लोगे तो लोग तुम्हे भी चाहने लगेंगे पर तुम ऐसे हो कि कोई तुम्हारे हाथ भी लगा दे तो इतने अधिक भड़क उठते

हो कि उसके हाथ से रक्त की धारा बह उठती है । ऐसी स्थिति में लोग तुम्हे क्यों चाहेंगे ? उपादेय बनने के लिये अपने में कुछ परिवर्तन तो करना ही होगा ।

“नही--नही, मैं अपना स्वभाव नहीं बदल सकता ।” काटे की इस बात को सुनकर फूल ने कहा—तब तुम्हारे साथ लोग ऐसा ही बर्ताव करेगे । तुम्हारा साथी यदि उनके पैरों में चुभ गया है तो तुम्हारे साथी ही उसे बाहर निकाल फेंकेगे । ऐसी स्थिति में तुम पैरों से भी स्पर्श करने योग्य नहीं हो ।

काँटा, फूल की सच्चाई का प्रतिकार नहीं कर सका दुर्मन व्यक्ति अपने स्वभाव को बदल नहीं सकते है तो वे कदापि शाश्वत रूप से उन्नति नहीं कर सकते है और न उन्हें कोई चाहता है । वे अपनी ईर्ष्या की आग में ही जलकर भस्म हो जाते है ।



(२)

मिट्टी और कुंभकार

बार--बार पैरों तले कुचले जाने के कारण मिट्टी अपने भाग्य पर रो पड़ी । अहो ! मैं कैसी बदनसीब हूँ कि सभी लोग मेरा अपमान करते हैं । कोई भी मुझे सम्मान की दृष्टि से नहीं देखता और मेरे ही भीतर से प्रस्फुटित होने वाले फूल का कितना सम्मान है । लोग उसे गले में माला पिरोकर पहनते हैं । भक्त लोग अपने उपास्थ के चरणों में चढ़ाते हैं । वनिताएं अपने बालों में गुंथ कर गौरव का अनुभव करती हैं । क्या ही अच्छा हो कि मैं भी लोगों के मस्तक पर चढ़ जाऊँ ?

मिट्टी के अन्दर से निकलती हुई आह को जानकर कुंभकार बोला—मिट्टी बहिन ! यदि तुम सम्मान पाना चाहती हो तो तुम्हें बहुत बड़ा सम्मान दिला सकता हूँ लेकिन एक शर्त है ।

एक क्या, जितनी भी तुम्हारी शर्तें हों, मुझे सभी स्वीकार है । बस मुझे लोगो के पैरों तले से हटा दो, कुंभकार की बात को बीच में ही काटते हुए मिट्टी ने कहा ।

तो फिर ठीक है, तैयार हो जाओ—कहते हुए कुंभकार ने मिट्टी जमीन से खोदकर बाहर निकाली। गधों की नवारी कराता हुआ उसे घर ले आया। पानी में डालकर उसे बहुत समय तक आर्द्र (गीली) रखी। इतना ही नहीं फिर पैरों से खूब रौंदा। कष्टों को सहते हुए मिट्टी बोली—अरे भाई ! बहुत कष्ट दे रहे हो। कब मुझे सम्मान का पात्र बनाओगे ?

मिट्टी बहिन ! धैर्य रखो। सहते जाओ सभी। जरूर तुम्हें इसका मधुर फल मिलेगा। कुंभकार की बात सुनकर मिट्टी कुछ नहीं बोली।

कुंभकार ने उसे चाक पर चढ़ाया और चाक को तेजी से घुमाकर घड़े का रूप दिया। धूप में सूखा दिया। कष्टों को सहते-सहते मिट्टी का धैर्य टूटने लगा तो कुंभकार बोला—बस-बस बहिन ! अब एक अग्नि परीक्षा ही बाकी है और सभी में तुम पास हो चुकी हो। यदि उसमें उत्तीर्ण हो जाओगी तो सती सीता की तरह लोग तुम्हें भी मस्तक पर चढ़ा लेंगे। क्योंकि वह अग्नि परीक्षा पूर्ण उत्तीर्ण हुई थी। इसीलिए सीता को लोग मस्तक भुकाकर सम्मान देते थे, किन्तु तुम्हें तो वनिताएँ मस्तक पर चढ़ा कर घूमेगी।

आखिर मिट्टी ने सब कुछ सहकर अग्नि परीक्षा भी उत्तीर्ण कर ली। फिर क्या था। वनिताएँ उसे प्रतिदिन मस्तक पर उठाकर इधर-उधर ले जाने लगीं।

मिट्टी अपना इतना सम्मान देखकर प्रफुल्लित हो उठी।

आखिर महान् वनने के लिये कष्ट परिषह तो सहने ही होते हैं।

धरती का आज्ञाकारी पुत्र

धरती माता ने अपने सभी पुत्र-पुत्रियों को जन्म के साथ ही सत् शिक्षाएँ दी थी । जिन्हे एक पुत्र के सिवाय सभी अच्छी तरह से पालन कर रहे हैं परिणाम स्वरूप उस एक के अतिरिक्त सभी सुखी है ।

बेटियों ! धरती मां ने गंगा-यमुना-सरयू को शिक्षा देते हुए कहा था कि तुम्हे अपने पानी को सदा निर्मल बनाए रखना है । चाहे तुम्हारे में कितनी ही गंदगी डाली जाए, तुम्हे गंदगी के साथ मिलकर अपने स्वभाव को नहीं छोड़ना है ।

गंगा-यमुना-सरयू ने मा की बात को अक्षरशः स्वीकार किया । इसी कारण आज भी लोग उन्हें पूजते आ रहे हैं ।

बेटे हिमालय को भी धरती मा ने शिक्षा दी थी कि उन्हें हर तूफान में अडिग बने रहना है । वह भी मां की आज्ञा का पालन कर रहा है । लोग उसे भी गौरव की दृष्टि से देख रहे हैं ।

ठीक इसी प्रकार माँ ने अपने अन्यान्य संतानों को

शिक्षा देते हुए अपनी श्रेष्ठतम संतान मानव को भी शिक्षा देते हुए कहा—पुत्र ! तुम मेरे सबसे अधिक प्रिय एवं बुद्धिमान पुत्र हो । तुम अपनी बुद्धि का प्रयोग सदा परोपकार में करोगे । दीन-दुखियों के प्रति आत्मीयता का व्यवहार करोगे । यदि तुम मेरी शिक्षाओं को जीवन में उतार लोगे तो निश्चय ही पूरे विश्व पर तुम्हारा एकाधिकार राज्य होगा । तुम्हें वहाँ अमनचैन मिलेगा । जो तुम्हारे सिवाय किसी अन्य के लिए संभव नहीं है ।

किन्तु मानव ने मां की आज्ञा का पालन नहीं किया इसलिए वह आज पशु से भी अधिक दुःखी जिदगी व्यतीत कर रहा है ।



(४)

लोहा और लुहार

लुहार के द्वारा बार-बार हथोड़े की चोट खाते हुए लोहा झल्ला उठा । तुम मुझे कितना ही पीट लो, मैं अपनी अक्कड़ छोड़ने वाला नहीं हूँ । जैसा हूँ वैसा ही बना रहूँगा ।

“तेरी यह अक्कड़ अधिक समय तक टिकने वाली नहीं है । एक न एक दिन तुझे मेरी इच्छानुसार पिघलना ही होगा । जानते हो आज आदमी ने तुझे और तुझसे भी

अधिक कठोर तत्वों को तरल बनाने की आधुनिक टेकनीक खोज निकाली है ।” हथोड़ो की चोटे लगाते हुए लुहार बोला ।

लेकिन फिर भी जब लोहे को पिघलते नहीं देखा तो लुहार क्रोध से तमतमा उठा । उसने लोहे को अग्नि में तपाना प्रारम्भ किया । कुछ ही समय के बाद लोहे की रंग-रंग में अग्नि प्रवेश कर गई । लोहा तपकर लाल सुर्ख हो गया । अपने शरीर को अग्नि में इस प्रकार जलते देखकर लोहे की अक्कड़ काफूर हो गई । वह बोला—तुम चाहो, वैसे ढल जाऊँगा, अब तुम मुझे जलाना बंद कर दो ।

मार के पीछे तो भूत भी भागते हैं, बोलते हुए लुहार ने कहा—ठीक है तुम मेरी बात मान गए अब मैं तुम्हें शीतल कर देता हूँ ।

पूर्ण शांति प्राप्त करने के लिये व्यक्ति को अपनी अक्कड़ की पकड़ छोड़नी ही होगी ।



आज की दुनिया में परिवर्तन हो रहा है ।
आदमी आदमी न रह शैतान हो रहा है ।
बदलते हुए रूप को देखकर लगता है सुन्नो,
मुनीम ही अब दुकान का मालिक हो रहा है ॥

(५)

मूर्ति और शैतान

कुणलता पूर्वक तरासी गई, नयनाभिराम मूर्ति रूप पाषाण को देखकर शैतान बोला—तुम कितने सुन्दर लगने लगे हो । तुम्हारी रमणीयता प्रत्येक दर्शक को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है । शिल्पकार ने अपनी कमनीय कल्पना को तुम्हारे में साकार कर दिखाया है । कितना अच्छा होता, तथाकथित सृष्टिकर्ता ईश्वर भी अपनी सुन्दरतम कल्पनाओं को मेरे मे साकार कर देता ।

शैतान की बात को सुनकर पाषाण निर्मित मूर्ति भुखर हो उठी—देखो प्यारे ! तुम मेरे से भी अधिक रमणीय नयनाभिराम हो सकते हो, किन्तु उसके लिये तुम्हें मेरी ही तरह समभाव पूर्वक सब कुछ सहना होगा । मूर्तिकार ने जब मुझे सभी ओर से तरासना प्रारंभ किया, तब मैं होने वाली अत्यधिक पीड़ा को समभाव से सहती रही । कुणल गिल्पी ने मेरे अन्दर से निरर्थक तत्व निकाल फेंके, तभी मैं मूर्ति रूप में निखर सकी । ठीक इसी प्रकार तुम्हारे भीतर से रहने वाले काम-क्रोध, मद-लोभ, विषय-कषाय को गुरु रूपी गिल्पी तरासे तो तुम भी समभाव से सहते जाओ । निश्चय ही तुम्हारी आत्मा शाश्वत रूप से रमणीय बन जाएगी ।

कलम और कागज

अपने ऊपर आती हुई कलम को देखते ही कागज ने कहा—जब भी तुम आती हो, मुझे सिर से लेकर पैर तक काले रंग से रंग देती हो । मेरी सारी शुक्लता और स्वच्छता को विनष्ट कर देती हो ।

कलम ने कहा—देखो, मैं तुम्हारी शालीनता-स्वच्छता भंग नहीं कर रही हूँ । बल्कि तुम्हारी उपादेयता में निखार ला रही हूँ । जब तुम्हें मैं अक्षरो की रगीनता से भर देती हूँ तो लोग तुम्हें सुरक्षित रखते हैं । समझदार व्यक्ति की दृष्टि में कोरे कागज का कोई विशेष महत्व नहीं होता । यदि इसमें कुछ न कुछ लिखा होता है तो सुझ व्यक्ति अवश्य उसे उठाता है और पढ़ने की कोशिश करता है तो भाई तुम्हारे ऊपर जितना अधिक लेखन होगा । तुम्हारी उतनी ही अधिक उपादेयता बढ़ती जाएगी ।

कलम की सत्य बात को, कागज ने सहर्ष स्वीकार कर ली ।

ऊपरी कालेपन या गोरेपन का इतना कोई महत्व नहीं है । महत्व तो उसका है कि उसके अन्तरंग में उपयोगी वस्तु क्या है ? □

क्रोध और मान

एक ही आत्मा के साम्राज्य पर आधिपत्य जमाने वाले क्रोध और मान परस्पर टकरा गए। क्रोध ने मान से कहा—“छोड़ दो मेरे साम्राज्य को। आत्मा पर एक मात्र मेरा ही आधिपत्य रहेगा।” मान ने कहा—“नहीं। तुम हटो। इस पर मात्र मेरा ही आधिपत्य रहेगा।” दोनों में बहुत देर से तू तू, मैं मैं होती रही। इसी बीच शैतान ने कहा—“अरे ! ऐसे मत चिल्लाओ। अगर मानव जाग गया तो तुम दोनों को निकाल बाहर कर देगा। दोनों सहम गए। अखिर दोनों ने मिलकर एक रास्ता निकाल लिया। अहं-मान से कहा—देखो। मेरा साम्राज्य अधिकतर मानव के अन्तरंग में रहेगा और तुम्हारा साम्राज्य मानव के बहिरंग में रहेगा। क्रोध ने मान की बात मान ली।

आज भी अहं मानव के भीतर रहकर काम करता है और क्रोध बाहर। किसी व्यक्ति ने किसी को अपशब्द कहा तो अभिमान अंदर से फूँकार मारता है तो क्रोध बाहर से चिल्ला उठता है।

यह आपेक्षिक दृष्टिकोण है।

(८)

ईश्वर और आदमी

एक वार आदमी ने तथाकथित सृष्टि के कर्त्ता ईश्वर से शिकायत की । तुमने मुझे धोखा दिया है । पूरे जगत में यह प्रचारित कर कि मानव दुनिया का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है । लेकिन मैं कहूँगा कि नहीं । पशु, मुझ से भी अधिक श्रेष्ठ है । जो सुख की नींद तो सोते हैं । जिन्हें किसी प्रकार का मानसिक या शारीरिक दुःख नहीं रहता । जबकि मेरे साथ तून् सारे ही दुःख लगा दिये हैं । ये बंगला, कार, हवाईजहाज आदि सारी सुख सामग्री तुमने हमको नहीं दी है । यह तो मैंने अपने ही दिमाग से बनाई है । तुमने तो जो जाति पशुओं को दी है, उतनी भी हमको नहीं दी ।

मानव की अन्तर्वेदना को सुनकर द्रवित होते हुए ईश्वर बोला—देखो भाई ! मैंने जो कुछ भी कहा, बिल्कुल सत्य कहा है । सारी दुनिया भी यही मानती है । मैंने सुख का जितना बड़ा खजाना तुम्हें दिया है, उतना किसी को नहीं लेकिन तुम उस खजाने की ओर ध्यान न देकर सुख की खोज बाहर ही बाहर कर रहे हो । अपने प्राणों की बहुमूल्य ऊर्जा को बाहरी तत्वों में खर्च कर रहे हो । इसी कारण दुःखी बन रहे हो । जरा बाहर से हटो—अन्तर्मुख

बनो । तुम्हें शान्ति का अखूट खजाना मिलेगा । मैंने वह खजाना वहीं रख रखा है ।

मानव उस ओर ध्यान नहीं दे रहा है, इसलिये दुःख का पात्र बन रहा है ।



(६)

नर और वानर

दो पथिक एक विशाल सघन-वृक्ष को देखकर थका-वट दूर करने के लिये उसकी छाया में बैठकर सुस्ताने लगे ।

एक पथिक ने वृक्ष पर बैठे बन्दर को देखकर दूसरे पथिक से कहा—देखो । यह बन्दर बड़ा नकलची होता है । इसमें अक्कल नहीं होती । यह हर चेष्टा की नकल कर लेता है, लेकिन उसके हानि लाभ को नहीं समझ पाता ।

दूसरे पथिक ने कहा—हां भई ! बात तो सही है । वह नकल कर सकता है पर इसमें अक्कल नहीं होती ।

बन्दर इन दोनों की बातों को सुनकर चिउंका—तुम नकलची बता रहे हो लेकिन जरा तुम अपने विषय में भी तो सोचो—तुम भी नकल ही कर रहे हो । अक्कल कहां लगा रहे हो ? देखो हर आदमी रोटी खाता है, पानी

पीता है । तुम भी रोटी खाते हो, पानी पीते हो । धन कमाना, बच्चे-बच्ची पैदा करना सारे कामों में तुम भी दूसरों की नकल ही उतार रहे हो । यही नहीं पाश्चात्य संस्कृति की तो पूरी की पूरी नकल कर रहे हो । खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूषा, बोल-चाल में बस पाश्चात्य संस्कृति की ही नकल उतारने में लगे हो । यह तो बतलाओ कि तुमने किस काम में अक्कल लगाई है । तुमने मस्तिष्क होते हुए भी अक्कल नहीं लगाई इसलिये तुम मेरे से भी गए बीते सिद्ध हुए हो । बन्दर की सच्चाई सुनकर दोनों ही पथिक चुपचाप उठकर रवाना हो गए ।



(१०)

नदी और शैतान

हिमगिरि के उतुङ्घ शिखर से प्रवाहित हो कल-कल, छल-छल का निनाद करती हुई, सुख एवं आनंद से इठलाती नदी अपनी अपावन को पावन बनाने वाली सलिल धारा से धरती को अभिसिंचित करती हुई विशाल जल राशि में अपने अस्तित्व को विलीन करने के लिये आगे बढ़ती चली जा रही थी ।

नदी के इस स्वभाव को देखकर कषाय रूप कीचड़

प्रकृति भी मुखर हो उठी]

[१३]

से सने, हैवानियत का रूप धारण किये शैतान ने नदी को सबोधित किया—अहो ! महद् आश्चर्यम् ! दुनियां तुम्हारे में कितना कूड़ा-कचरा, अशुचि डालती है, पर तुम अपने आपको उससे निर्लिप्त रखकर अपनी परम-पवित्र धारा में ही प्रवाहित रहती हो । लोग तुम्हें पूजते है । मुझे भी लोग तुम्हारी तरह क्यों नही पूजते ।

नदी के कल-कल निनाद के रूप में वाणी मुखरित हुई—देखो भाई ! तुम भी निश्चित रूप से उपास्य बन सकते हो । पर लोगों की दृष्टि मे सम्मानित बनने के लिए कुछ तो अपने में रूपान्तरण लाना होगा । मेरे अन्दर कितना भी कूड़ा-कचरा प्रक्षिप्त कर दिया जाता है, मैं अपने आप-उससे लिप्त नहीं करती । अपने ही स्वभाव में गतिशील रहती हूँ । इसीलिए लोग मुझे पूजते हैं । तुम भी, ऐसा ही स्वभाव अपना लो तो लोग तुम्हें भी पूजने लगेगे ।

सत्य है—आत्मा, विभाव से हटकर स्वभाव में पूर्णतया लीन हो जाती है तो संपूर्ण जगत् की उपास्य बन जाती है ।



बादल और हवा

काले कजरारे भीमकाय बादलो को देखकर आदमी भय के मारे काँप उठा—यदि ये बादल सारे ही यही बरस पड़े तो प्रलय हो जायेगा । प्रार्थना की, मानवो ने, मेघ से—हे मेघराजा ! तुम थोडा थोडा बरसो । अन्यथा तुम्हारा यह उपकार हमारे लिये घातक सिद्ध होगा । किन्तु मेघ ने एक नही सुनी और जोर से गर्जन-तर्जन करने लगा ।

हवा ने यह देखकर मेघ से प्रार्थना की—मेघ देवता ! देखो अपना काम जनता का उपकार करना है, आप ऐसा न करे कि जिससे प्रलय की स्थिति बन जाय ।

घटाटोप बादल घड़घड़ाया, दुबली-पतली हवा को देखकर--जा, जा बड़ी शिक्षाएँ देने चली है, अपना काम कर । मेरे काम मे हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है ।

हवा ने कहा—मेघराज ! मैं आपके काम मे हस्त-क्षेप नही कर रही हूँ । किन्तु निवेदन इतना ही है कि आप अपने इस प्रलयकर रूप मे कुछ परिवर्तन कर ले । लेकिन जब मेघ अपनी बात-पर ही अड़ा रहा तो हवा ने प्रलय से लोगों की रक्षा करने के लिए तूफानी रूप धारण किया कि भीमकाय बादल तितर-बितर हो गया ।

धनवान यदि अपने स्वार्थ में पड़कर गरीबों की नहीं सुनता है तो उन गरीबों की निःसत्व सी प्रतीत होने वाली आह भी, उसके वैभव को इसी प्रकार तितर-बितर कर देती है ।



(१२)

कीचड़ और कमल

कीचड़ ने कमल से कहा—बड़े आश्चर्य की बात है कि आखिर तू पैदा तो मेरे उदर से ही हुआ है लेकिन दुनिया तेरे पास तो दौड़-दौड़ के आती है और मुझसे दूर भागती है । तुम्हारे प्रति आकर्षित होती है और मुझ से घृणा करती है । आखिर ऐसा क्यों ?

कमल ने कहा—कीचड़ ! निश्चय ही तुम्हारा मेरे पर बहुत उपकार है । मैं यह उपकार कदापि नहीं भूल सकता । लेकिन तुमने मेरे मे तो सुन्दरता और खुशबू भर दी । पर तुम जैसे के जैसे ही दुर्गन्धमय और असुन्दर ही रहे हो, जब तक तुम अपने को नहीं बदलोगी, तब तक घृणापात्र ही बनी रहोगी ।

आज के कई उपदेशकों की वाणी सुनकर भद्रिक आत्माएँ साधनाशील हो रहीं हैं । किन्तु वे उपदेष्टा अपने को नहीं बदल पाने के कारण वही के वही अटके हुए हैं ।

दाँत और जीभ

दाँत और जीभ एकवार आपस में टकरा गए । दाँतो की चोट को जीभ सहन नहीं कर पाई । खून की धारा निकलने लगी । खून को देखकर जिह्वा क्रोधित हो उठी । और दाँत को लताडने लगी । अरे निर्दय ! तू जिसकी थाली में खाता है, उसी में छेद करता है । मेरे लिए जो वस्तुएं आती हैं, उन्हीं को तू चबाता है और मुझे ही काटने लगा है । याद रख यदि मैंने तेरा साथ नहीं दिया तो तू कुछ नहीं कर पाएगा ।

दाँत ने कहा—अहो जिह्वारानी ! क्यों चिल्लाती हो । इसमें गलती मेरी है या तुम्हारी ? मैं अपना काम कर रहा था । तुम पहले ही चटखारा लेने के लिए मेरे काम के बीच में चली आई । यदि दूसरो के कामों में टांग अड़ाओगी तो फिर ऐसा ही फल पाओगी । याद रखो आज तो मैंने थोड़ी ही चोट पहुँचाई है । अगर आगे से मेरे कामों में टांग अड़ाई तो काट के अलग करूँगा ।

दाँत की जोश भरी बात को सुनकर जिह्वा सहम गई और अपने काम में लग गई ।

दूसरों के कामों में निरर्थक अपनी टांग अड़ाना निश्चय ही स्वतः के लिए हानिकारक है ।

❀

प्रकाश और अंधेरा

अग-जग को प्रकाशित करने वाले सूर्य के प्रखर प्रकाश में भी अंधेरा देखकर रजनीपति उल्लू चीख उठा—अहो ! दुनिया कितनी पागल है । सभी कहते हैं सूर्य प्रकाश देता है, लेकिन कहां, मैं तो अंधकार ही अंधकार देख रहा हूँ, प्रकाश होता तो मुझे भी दिखलाई देता । सूर्य प्रकाश देता है, यह मात्र लोगों की बकवास है ।

उदित होते हुए सूर्य ने उल्लू की चीख को सुनकर उसे समझाया—भाई ! मैं प्रकाश देता हूँ, सारा जगत् इसका साक्षी है । तुम्हारे जैसो को छोड़कर दुनियां के किसी भी व्यक्ति को पूछ सकते हो । रात्रि के अन्दर सोने वाले सभी उठ बैठे हैं, जो कि मेरे प्रकाश का प्रमाण है ।

“मैं नहीं मानता इसको” उल्लू ने अकड़कर कहा ।

तब सूर्य बोला—तुम मानो या न मानो, इससे मुझ में कोई फर्क नहीं पड़ता । अन्य अनेकों के समझाने पर भी उल्लू अपनी ही बात पर डटा रहा ।

खर ! वह समझ ही नहीं सकता । क्योंकि स्वयं ही गलती पर है, उसकी प्रकृति ही ऐसी है ।

दुराग्रही व्यक्ति को दुनियां की कोई भी शक्ति समझ नहीं सकती ।

चेहरा और दर्पण

चेहरे ने दर्पण को कहा—तुझे अपने आप पर बहुत चमड है। चमक-चमक कर तू मुझ पर अपना रोब जमाता है, कर तो कुछ सकता नहीं। बिब जब तुम्हारे सामने आता है, तो ही प्रतिबिब तुम्हारे मे पड़ता है। सफाई का सारा काम तो मानव को ही करना होता है। तू क्या करता है?

दर्पण ने बहुत ही शालीनता के साथ कहा—भाई ! इतना दर्प मत करो। आखिर तुम्हारी गंदगी तो मेरे कारण ही दूर होती है। मेरे बिना तुम्हारी सफाई मानव भी अच्छी तरह नहीं कर सकता।

चेहरे ने कहा—नहीं-नहीं। यह तुम्हारा अभिमान है। तेरे बिना भी मेरा काम चल सकता। दर्पण ने कहा—ठीक है, जैसी तुम्हारी इच्छा। आखिर एक दिन दर्पण देखे बिना ही चेहरा मानव के साथ सभा मे जा वैठा। ज्यो ही सभा में वैठा कि सभासदो को यह कहते हुए पाया कि-क्या आज तुमने अपना चेहरा दर्पण मे नहीं देखा ? कितने बब्बे पडे हैं चेहरे पर ?

यह सुनकर चेहरे को अपनी गलती महसूस हुई और दर्पण की सत्यता जाहिर हुई।

आज भी मानव महापुरुषो के आदर्शमय दर्पण को नहीं देखकर अपने गरूर मे दुनिया के चौराहो पर खडे होकर दुःखो के थपेडों से अपमानित किये जा रहे है।

“दारू और दारुडिया”

लड़खड़ाता हुआ दारुडिया गटर की गंदी नालियों में गिरते हुए दारू के प्रति दहाड़ा, साले ने मेरी इज्जत मिट्टी में मिला दी । कहां तो मैं आलीशान बंगले के मखमली कालीन पर ऐश करता था और कहां इसने मुझे इस भयानक गंदगी में ला पटका है । सोचा तो मैंने यह था कि वह उल्लू का पट्टा मुझे शांति देगा, किन्तु उसने तो मेरी रही सही शान्ति भी छीन ली ।

तब मादकता की जहरीली मुस्कराहट भरते हुए सदीरे ने कहा--क्यो बे ! अब क्यो चिल्लाता है । मैंने कब कहा था--तुझे, मेरे पास आने को । तूने ही तो मुझे हंसते उछलते उदरस्थ किया था । अब जब मैं अपना प्रभाव दिखा रहा हूँ--तो तू चिल्ला रहा है ! तूने मुझे अपनाया है तो अपना पूरा काम किये बिना अब मैं जा नहीं सकता ।

दारुडिया कुछ प्रतिकार कर पाता, उससे पहले ही वह भयानक दुर्गंध के कारण अपनी सुध-बुध खो बैठा ।

बिना सोचे समझे ही मानव भौतिकता के सुनहरे आकर्षण में फंसकर दुःखी बनता जा रहा है । ❀

(१७)

“धोबी और कपड़ा”

धोबी के हाथो वार-वार मार खाते हुए कपड़े ने कहा-तुम बहुत निर्दयी हो । तुम्हारे मे बिल्कुल भी रहम नहीं है । मार-मार कर तुमने मुझे अधमरा कर दिया है ।

धोबी ने कहा-दोस्त जब तक तुम अपनी मलिनता नहीं छोडोगे ! तब तक तुम इसी तरह मार खाते रहोगे । मैं तुम्हारे में हर बार स्वच्छता लाने की कोशिश करता हूँ और तुम पुन पुन. गदे हो जाते हो !

कपड़े ने कहा-मैं अपनी इस आदत को छोड़ नहीं सकता । तो फिर मैं भी तुम्हारी पिटाई नहीं छोड सकता । एक सोट और लगाते हुए धोबी ने कहा ।

आत्मा भी जब तक कर्मों की गदगी नहीं छोडेगी । तब तक वह भी दु.खो से इसी तरह पिटती रहेगी ।



“आम वृक्ष और खजूर वृक्ष”

एक दिन जंगल में आम वृक्ष और खजूर वृक्ष में चर्चा चलने लगी । खजूर के वृक्ष ने कहा—अरे तुम तो निरे मूर्ख हो । ज्यों-ज्यों तुम्हारे ऊपर फल लगते हैं, तुम झुकते जाते हो । एक बच्चा भी तुम्हारे ऊपर से बिना कुछ परिश्रम किये फल तोड़ लेता है । ऐसी विनम्रता का आज की दुनियां में कोई सुफल नहीं मिलने वाला है । देखो ना, मैं कितनी ऊंचाई पर फल लगाता हूँ, छोटे मोटे की बात तो दूर रही, बड़े से बड़े दक्ष व्यक्ति को भी फल पाने के लिये पसीने उतर आते हैं ।

आम वृक्ष ने कहा—भय्या । पूर्व जन्मों के अशुभ कर्मों के कारण तो हम वृक्ष बने हैं । यदि इस जीवन में भी थोड़ा बहुत उपकार करना नहीं सीखेंगे तो इस जीवन के साथ, आगामी जीवन भी निस्सार बन जाएगा । खजूर ने कुछ नहीं सुनी । वह अपनी ही अक्कड़ में तना रहा ।

थोड़ी ही देर में भयानक तूफान आया । आम वृक्ष का डालियाँ झुकी होने से वह बच गया । किन्तु खजूर वृक्ष जो अपनी ही अक्कड़ में तना हुआ था । तूफान ने उसे जड़मूल से उखाड़ कर भूमि-सात् कर दिया ।

आगामी जीवन को तो जाने दो, अभिमानी का वर्तमान जीवन भी बिगड़ता जाता है ।

(१६)

ताला और चाबी

ताले ने अकड़ते हुए चाबी से कहा—अरे तू छोटीसी मकड़ी ! तुझे जर्म नहीं आती, मेरे पेट में घुसते हुए । बड़ी होशियारी दिखाने लगी है लोगो को अपनी । सारे घन का रक्षण मैं करता हूँ और कमाल तू दिखाती है । चल हट । आइन्दे मेरे पेट में घुसने की कोशिश मत करना ।

चाबी ने कहा—अरे ताले ! आज इतना विगड़ क्यों रहा है । तुझे अपनी ताकत पर इतना गरूर है तो ठीक है, आज से मैं तुम्हारे पास नहीं फटकूंगी । चाबी एक ऐसे कोने में जा दुबकी कि मानव को मिली ही नहीं । तब आदमी ने आव देखा न ताव और हथोड़े का प्रहार कर दिया ताले पर । दो चार चोटो से ही ताला तड़-तड़ की आवाज करता हुआ अपने ही अभिमान के परिणाम स्वरूप एक और जा गिरा ।



(२०)

“फूल और माली”

खिलते हुए फूल को देखकर माली ने कहा फूल से कितने सुन्दर लग रहे हो तुम ? तुम्हारी सौन्दर्य छवी, भीनी-भीनी सुगन्ध से भ्रमर स्वत ही आकर्षित होकर तुम्हारे पास आ रहे है ।

माली की बात को सुनकर फूल ने कहा—सच ! तुम्हारे निमित्त एवं मेरे उपादन ने मेरा रूप निखारा है । यदि मानव भी समन्वय की यह कडी सिखले तो उसका भी जीवन उपवन खिल सकता है ।



आज वक्ताओ मे आचरण कम हो रहा है ।
दीपक तले निरन्तर अधेरा हो रहा है ।
चका चौध की इस दुनिया मे मानो,
विना तराजू के ही तोल हो रहा है ॥

(२१)

“कौआ और आदमी”

कौआ की काँय-काँय सुनकर आदमी ने कहा कि काग बहुत धूर्त और नीच जाती का पक्षी है । नीति में भी कहा है—“पक्षिणा च वायस ” पक्षियो में कौआ धूर्त होता है । आदमी के मुख से अपने प्रति निन्दा युक्त वचनों को सुनकर काग ने काँय-काँय करते हुए कहा—

तुम मेरी निन्दा कर रहे हो, कोई बात नहीं, लेकिन क्या कभी तुमने अपने लिए भी सोचा है, तुम्हारा स्तर कितना गिरा हुआ है ? मुझे खाने के लिए थोड़ी-सी भी वस्तु मिल जाएगी तो मैं आवाज लगा-लगाकर अपने सभी सजातीय साथियों को एकत्रित करके फिर सबके साथ खाऊँगा और एक तुम हो जो तुम्हें सबके सामने भी कोई वस्तु मिल जाय तो मनुष्य जाति की बात तो दूर रही अपने भाई को भी एक दाना नहीं दोगे ।

कहा मेरा स्तर और कहा तुम्हारा स्तर ? काग की कड़वी सच्चाई को सुनकर आदमी मुंह फेरता हुआ चुपचाप चल पड़ा ।



प्रकृति भी मुखर हो उठी]

[२५

“धरती और अम्बर”

अनादि काल से एक दूसरे की ओर भाकने वाले धरती और आकाश ने एक दिन रात्रि की नीरवता में परस्पर वार्तालाप प्रारम्भ कर दिया ।

धरती ने आकाश से कहा—गगन भैया ! मुझे अनन्त काल हो गया इस प्रकार रहते रहते । मेरी छाती पर कभी पहाड़ बन गए तो कभी समुद्र बन गए । पहाड़ के स्थान पर समुद्र बन गए तो समुद्र के स्थान पर पहाड़ बन गए । श्मशान शहर बन गया और शहर श्मशान बन गया । लेकिन मैंने किसी के साथ भी स्थायी लगाव नहीं रखा, इसीलिये वे सब तो ढह गए, किन्तु मैं तो उसी रूप में हूँ जिस रूप में पहले थी ।

धरती की बात सुनकर अम्बर ने कहा—धरती वहिन! बस-बस तुम्हारी तरह ही मैं हूँ । मेरे स्थान पर भी बादल बनते हैं, बिजलियां चमकती हैं, तूफान आते हैं, लेकिन मैं कभी भी उनसे अपना अभिन्न सम्बन्ध नहीं जोड़ता हूँ, अतः अन्त में मेरा निरव रूप उन सबसे हटकर प्रकट हो ही जाता है ।

आश्चर्य इस बात का है कि धरती-अवर के अन्दर
 कैसी भी स्थिति घटित होने पर भी वे अपना स्वरूप नहीं
 छोड़ते हैं । अतः आज भी वे अपनी उसी शान में आदमी
 के सामने खड़े हैं । किन्तु सोचने समझने की शक्ति रखने
 वाला आदमी जिससे भी जुड़ता है चाहे माता हो पिता हो,
 भाई बहिन पत्नी कि वा धन हो वस उसी में आसक्त बन
 तन्मय हो जाता है । परिणाम स्वरूप आज तक वह अपनी
 निजी शक्ति को प्रकट ही नहीं कर पा रहा है । इधर से
 उधर सुख की फिराक में दुःख की गलियों में भटक रहा है ।



बिना नीव के मकान ढह जाता है,
 बिना आधार के पानी बह जाता है ।
 अन्तरंग की ठोसता नहीं होगी जब तक,
 बिना आधार का उत्थान ढह जाता है ॥



उगता हुआ सूर्य कमल को खिला रहा है,
 उल्लू की आंखों को अन्धेरा दिखला रहा है ।
 महावीर का सदेश भी जन मानस को,
 पाप और पुण्य की परिधि बतला रहा है ॥

(२३)

“दूध और पानी”

एक दिन पानी ने दूध से कहा—वाह ! जनता, ने तुम्हारा बहुत अच्छा मूल्यांकन किया है तुम्हारी बहुत कीमत है ससार मे । तुम्हें लोग पैसे से खरीदते है जबकि मुझे यों ही मुफ्त में ले लेते हैं । यद्यपि तुम्हारे बिना लोगों का काम चल सकता है, पर मेरे बिना नहीं । तथापि लोग तुम्हे जितना चाहते है- उतना मुझे नहीं । कितना अच्छा हो कि मैं भी तुम्हारे जैसा बन जाऊं । दूध ने कहा बहुत अच्छा । अगर तुम मेरे जैसा बनना चाहते हो तो बन सकते हो, लेकिन तुम्हे इसके लिये कठिन साधना करनी होगी ।

पानी ने कहा—अरे तुम जैसा कहो, वैसा करने के लिये तैयार हूँ । वस तुम मुझे अपने जैसा बना लो । तो आ जाओ मेरे मे समाविष्ट हो जाओ । कर दो अपना अस्तित्व विलीन मेरे में । अपना रूप-रंग-गंध आदि कुछ भी नहीं रहना चाहिये । दूध ने पानी से कहा ।

पानी ने वही किया । खो दिया अपना अस्तित्व दूध में तो वह भी दूध की तरह ही मूल्यवान बन गया ।

यदि शिष्य भी अपना अस्तित्व पूर्ण रूप से गुरु चरणों में विलीन कर दे तो उसका भी गुरुत्व निखर सकता है ।

(२४)

“पत्थर और नदी”

नदी में पानी के थपेड़ो को खाते-खाते पत्थर को क्रोध आ गया । और वह चिल्लाया कि तुमने तो मुझे साथ में इसलिये लिया था कि तुम्हें गोल-मटोल करके चमकता हुआ आकर्षक पत्थर बना दूंगा । लेकिन अब जब मैं तुम्हारे चुगल में फस गया हूँ तो तू मेरी मरम्मत किये जा रही है, यह अच्छा नहीं है, निकाल दो मुझे बाहर ।

नदी ने कल-कल करते हुए बहुत शान्त भाव से कहा अरे तू इतना चिल्लाता क्यों है ? पानी के थपेड़े तो पड़ेगे ही वस इस थोड़े कष्ट को सहन करके फिर देखना तेरा रूप कितना निखरता है ?

आखिर पत्थर ने नदी की बात मानली और थपेड़ो को सहन करता हुआ नदी में इधर से उधर लुढ़कने लगा । लुढ़कते लुढ़कते वह एक दिन गोल-मटोल और चमकता हुआ चाक्-चिक्क्यपूर्ण बन गया, तब नदी ने उसे तट पर उछाल दिया ।

लोगो ने देखा और वह उन्हें पसन्द आया कर्मो को थपेड़ों को भी अगर आदमी इसी प्रकार समभाव के साथ सहन करता जाय तो एक दिन वह भी अपनी समस्त विकृतियों को दूर करके अपना परम स्वरूप उजागर कर सकता है ।

प्रकृति भी मुखर हो उठी]

[२६

(२५)

“चोर और तिजोरी”

करोड़पति सेठ की तिजोरी में करोड़ों रुपये भरे रहते थे । तिजोरी उन सब रुपयों की रक्षा करती थी । अपने लिये एक रुपये की बात तो दूर रही, एक दमड़ी भी खर्च नहीं करती थी ।

एक दिन रात्रि को एक चोर सेठजी की हवेली में घुस गया और सीधा उस नोटों से भरी तिजोरी के पास पहुंच गया, ‘चोर ने तिजोरी को खोलने की बहुत कोशिश की’ लेकिन जब वह नहीं खुली तो उसने तिजोरी पर हथोड़े का प्रहार कर दिया ।

हथोड़े के प्रहार से तिजोरी खड़खड़ायी और बोली अरे तुम मुझे मार क्यों रहे हो ? मैंने तुम्हारा क्या बिगाडा है ? मैं तो रुपयों की रक्षा कर रही हूँ ।

इसीलिये तो मैं तुम पर प्रहार कर रहा हूँ । क्योंकि रुपयों का उपयोग न तुम अपने लिये कर सकती हो न ही दूसरो के लिये । ऐसा कहते हुए चोर ने पूरे जोर से एक और हथोड़े का प्रहार कर तिजोरी को तोड़ ही डाला । जो व्यक्ति सम्पति का न अपने लिये और न ही दूसरों के लिये उपयोग करता है उसकी यही दशा होती है । ❀

“खरगोश और शिकारी”

खरगोश अपनी जान बचाने के लिये वेतहाशा दौड़ा जा रहा था, जगल की ओर । पीछे-पीछे शिकारी भी दौड़ रहा था । आखिर नन्हा खरगोश कहा तक दौड़ पाता । दौड़ता-दौड़ता थक गया, सोचने लगा कहां छिपूं ? कहां जाऊ ? उसके दिमाग में एक बात आई और उसने अपनी दोनों आंखे बन्द कर ली, सोचने लगा कि मैं सुरक्षित हो गया । कोई भी मुझे दिखलाई नहीं देता, अब मुझे मारने वाला कोई नहीं है ।

उस विचारे को क्या मालूम कि आंखे मैने बन्द की है । शिकारी ने नहीं । उसे तो सब दिख ही रहा है ।

पीछे-पीछे दौड़ते हुए शिकारी ने उसे पकड़ लिया और यह बोलते हुए ले जाने लगा कि आखिर तू कहां तक भाग पाएगा, आंखे बन्द करके बैठ गया और पकड़ा गया ।

शिकारी की आवाज के साथ पवन चला और वृक्षों से सू-सू की आवाज इस प्रकार निकली—अरे दुष्ट! यह तो अज्ञानी हैं, इसलिये तुम्हारी पकड़ में आ गया । समझदार कहलाने वाला इन्सान तेरी भी यही हालत बनने वाली है । तू भी धन-दौलत परिवार के गुमान में मृत्यु से बचने के लिये विवेक की आँख बन्द करके चल रहा है, नहीं मालूम तुम्हें भी कि मृत्यु देख रही है । वह भी तुम्हें एक दिन इसी प्रकार पकड़ कर ले जाएगी । जिस दिन तेरी रक्षा करने वाला कोई नहीं होगा ।

❀

(२७)

“हल और धरती”

हल के तीखे नोक से उखड़ते-उखड़ते धरती कराह उठी—अरे हल ! तुम यह क्या कर रहे हो । बार-बार मेरे पेट में अपना तीखा नोक डाल-डाल कर तुमने मेरा अग-अग विदीर्ण कर डाला है ।

हल ने कहा—प्यारी धरती ! तुम घबराओ मत मैं तुम्हारे लिए अच्छा ही कर रहा हूँ । तुम्हारे भीतर मे रहा हुआ जो ठोसपन कठोरता है उसे निकाल रहा हूँ । जब ठोसता पूरी तरह तुम्हारे भीतर से निकल जाएगी तब देखना तुम्हारे ऊपर कैसी सुन्दर हरीतिमा छाती है ।

धरती ने हल की बात मान ली । सहती रही, सब कुछ सहती रही, आखिर तो सहन शीलता ने रंग दिखाया और सारी धरती न मानो नयनाभिराम हरी साड़ी पहन ली हो । ऐसा दिखने लगा ।

जो व्यक्ति अपने भीतर से कषायों की कठोरता को निकाल कर कोमल भाव में आ जाता है, वह जन-मानस में अविस्मरणीय बन जाता है ।

❀ ❀

(२८)

“लोहा और आग”

लोहे ने अकड कर अपनी गर्दन ऊँची करते हुए कहा—संसार की किसी भी वस्तु में ताकत नहीं जो कि मुझे भुका सके ।

ये सुनकर सभी तत्व स्तब्ध रह गए । आखिर सोचने लगे कि इसकी अकड को कैसे कम किया जाय । अग्नि ने कहा कि यदि मानव इसे मेरे ऊपर रख दे तो मैं इतनी तेजी से ताप लगा दूँ कि इसे भुकाने की बात तो दूर रही, इतना तरल बना दूँ कि फिर इसे जैसा चाहे वैसा मोड़ दो तो भी यह कुछ नहीं कर सकता । मानव ने यह बात सुन ली । उसे लोहे से काम लेना ही था और फिर उसे इसके भुकाने का उपाय भी मिल गया । अब क्या कहना, बस चढ़ा दिया, लोहे को अग्नि पर और लोहा तेज ताप को पाकर पिघलने लगा ।

सारी अकड उसकी पानी में मिल गई । सत्य है—
अभिमानी व्यक्ति को एक दिन संताप का पात्र बनना पड़ता है ।



प्रकृति भी मुखर हो उठी]

[३३]

(२६)

“शेर का सन्तव्य”

एक बार जंगल के सभी पशुओं ने एकत्रित होकर यह निर्णय कर लिया, कि हमें सिंह को राजा नहीं मानना चाहिए । हम भी सिंह की तरह ही स्वतन्त्र विचरण करेंगे ।

जब सिंह को इस बात का पता चला तो वह बोला— मुझे तुम लोगों कि कोई आवश्यकता नहीं है । मेरे सेवक के रूप में तुम रहो या न रहो । उससे मुझ में कोई अन्तर आने वाला नहीं है, मैं अपना जिकार स्वयं करता हूँ और छोटे से छोटा काम भी स्वयं करता हूँ । इसलिए मुझे तुम्हारी आवश्यकता भी नहीं है । मेरी आज्ञा में रहने से मुझे नहीं तुम्हें ही लाभ है ।

मेरे स्वतन्त्र स्वावलम्बन को कोई नहीं रोक सकता । मैं उस मानव की तरह मूर्ख नहीं हूँ कि नौकर हो तभी तक वह उसका मालिक है । और नौकर चला जाय तो मालिक पशु बन जाय तो ऐसा मालिक, मालिक नहीं नौकर है ।

जंगल के राजा सिंह की बात सुनकर सभी पशु समझ गए और वह पुनः सिंह की आज्ञा में ही रहने लगे ।

❀ ❀

नदी और समुद्र

मधुर कलकल निनाद करती हुई वह रही नदी को देखकर समुद्र उफना—अरे नदी, तू थोड़ा सा पानी लिये घूमती है और फिर भी इतना अधिक अभिमान का प्रदर्शन कर रही है । देख मेरे पास असीम जलराशि होते हुए भी मैं तेरी तरह छिछला नहीं हूँ । इसीलिये लोग मेरी गर्भारता का वखान करते हैं ।

अपनी शैली बघारते समुद्र को सरिता ने बड़े ही स्नेह भाव से कहा—समुद्र दादा ! यह सत्य है कि आपके पास अपार जलराशि है और आप मे गभीरता भी है, किन्तु यदि आप में जोरदार ज्वार आ जाय तो सृष्टि का प्रलय हो जाय । आह ! अपार जलराशि के होते हुए भी आप में रहा हुआ खारापन लोगो को एक चुल्लू भर पानी भी पीने नहीं देता ।

मेरे पास मे क्यो न थोड़ा ही पानी हो किन्तु लोग पीकर तृप्त होते हैं । खेती भी सिंचित होकर धान्य देती है । मेरी आवाज अभिमान को प्रदर्शन नहीं करती, अपितु लोगों के मन को खुश करती है । नदी की कड़वी सच्चाई सुनकर सागर मौन हो गया । बहुत धन संपत्ति भी है पर यदि अभिमान का खारापन है तो वह संपत्ति कोई काम की नहीं है । थोड़ी ही संपत्ति क्यों न हो, पर व्यवहार मधुर है तो सभी आकर्षित हो जाते हैं ।

प्रकृति भी मुखर हो उठी]

[३५

गैस-सिलेण्डर

रसोई घर में शात वैठी हुई वस्तुएँ मुखर हो उठी और उनमें परस्पर वार्तालाप होने लगा—

चूल्हे ने कहा—मैं दिन भर आग में तप-तपकर मानवों को गर्म-गर्म भोजन देता हूँ । मेरे तपे बिना मानव को भोजन प्राप्त नहीं हो सकता ।

चूल्हे की बात को सुनकर गैस-सिलेण्डर बोला—तुम तो तपते ही हो लेकिन मैं तो मानवों को गर्म भोजन देने के लिए अपनी शक्ति गैस को बराबर खर्च करता हूँ, तभी वे भोजन गर्म कर सकते हैं । मेरे में इतनी शक्ति है कि अगर विस्फोट कर दूँ तो यह रसोई तो क्या पूरा घर तबाह हो सकता है ।

इन दोनों की बातों को सुनकर चिमटा बीच में ही खनखना उठा—हां यह सत्य है कि गैस सिलेण्डर यदि विस्फोट कर दे तो पूरा घर भस्म हो सकता है । लेकिन हमने सदा सर्जनात्मक काम करना है । मानव की तरह विध्वंसात्मक काम नहीं । गैस सिलेण्डर सीमा में रहकर

ही गैस देता है इसलिए उसका महत्व है । वैसे ही मानव भी सदाचार, नैतिकता एवं सत्य की सीमा में चलता है तो ही वह स्व और पर के लिए सर्जनात्मक रूप उपस्थित कर सकता है । अन्यथा कितनी ही सपत्ति, वैभव कमाले किन्तु सुखी नहीं हो सकता ।

चिमटे की इस खन-खनाहट के पीछे उभरे शाश्वत सत्य को सुनकर मानव चौकन्ना जरूर हो गया फिर भी वह आज भी उसी स्थान पर खड़ा है ।



आज भारत मे धर्मों की कोई कमी नहीं है,
पुरान तथा कुरानों की भी कोई कमी नहीं है ।
दीपक तले अन्धेरा लेकर चलने वाले,
धर्म उपदेष्टाओं की भी कोई कमी नहीं है ॥



राष्ट्र की सुरक्षा शस्त्र निर्माण से नहीं होती,
शरीर की सुरक्षा अधिक खान पान से नहीं होती ।
वासना मे सुख समझने वाले लोगो !
जीवन की सुरक्षा भोगविलास से नहीं होती ॥

(३२)

हीरे का मूल्यांकन

हीरे की चमचमाहट को देखकर हर व्यक्ति का मन उसके प्रति लुभाने लगा। डायमण्ड के बाजार में बड़े-बड़े हीरक-पारखी उसका मूल्यांकन करने लगे। कोई उसकी कीमत दस हजार बताने लगा, तो कोई बीस हजार, तो कोई पचास हजार, तो कोई एक लाख। हीरे का मूल्य बढ़ना ही चला गया। हीरा, जौहरियों के एक हाथ से दूसरे हाथ में जाने लगा। सभी लोग उसका मूल्यांकन कर रहे थे।

हीरा जौहरियों को अपना मूल्यांकन करते देख, एक दिन मुखर हो उठा और बोला—मेरे भाईयो ! आज मैं अपने आप में बहुत प्रसन्नता की अनुभूति कर रहा हूँ कि मैं जमीन में से निकलकर आज इतना योग्य हो गया हूँ, आप सब मेरी बढ़-चढ़कर कीमत कर रहे हैं। लेकिन मुझे इतना सब कुछ पाने के लिए बहुत बड़ी कुर्बानी करनी पड़ी है। मुझे जमीन से निकाल कर लोगों ने जगह-जगह से काटा है, तरासा है, घिसा है, रगड़ा है। मुझे चमकाने के लिए अनेक तरह के भयंकर से भयंकर कष्ट दिए हैं। लेकिन मैं

सबको समभाव से सहता गया, परिणाम स्वरूप आज मैं आपके मुंह पर चढ़ गया हूँ ।

क्या ही अच्छा हो कि मेरी कीमत करने के साथ ही जरा आप अपनी भी कीमत कर ले । महान् बनने के लिए केवल मानव शरीर को पा लेना ही पर्याप्त नहीं है, अपितु जीवन के साथ जुड़े अतिरिक्त तत्वों को काट-छाट कर अलग करना होगा । स्वार्थ, अनैतिकता, हिंसात्मक भावनाओं को दूर करना होगा । जीवन को सदाचार, नैतिकता, सत्यता से चमकाना होगा । विलासी जीवन, कभी भी महान् नहीं बन सकता ।

हीरे की इस आवाज ने जोहरियों को भी अपने आपके लिए सोचने हेतु विवश कर दिया ।



जो काट दे एक ही झटके से उसे तीक्ष्ण
तलवार कहते हैं,
जो बनाले पर को अपना भी उसे सही
व्यवहार कहते हैं ।
कमल की तरह निर्लेप रहकर दुनिया में,
जो काट दे कर्म बन्धन को उसे ही शुभ-
विचार कहते हैं ॥

गुड मार्निंग ही गुडइवनिंग है

महकते उपवन में, अरुणोदय की वेला में विहंसता हुआ कमल निरन्तर विकस्वर हो रहा था, तो कुमुदिनी सकुचार्ती हुई सिकुडती चली जा रही थी ।

एक पुष्प विकस रहा है तो दूसरा फूल सकुचा रहा है । कमल, कुमुदिनी से नए उल्लास, नई उमंग, नए तेज के साथ गुड—मार्निंग कर रहा है तो कुमुदिनी नई प्रसन्नता से गुड इवनिंग कर रही है । महकते उपवन में प्रवेश करते हुए मानव ने पुष्पों की यह मुखरता देखी तो वह स्तब्ध रह गया और वह सोचने लगा कि एक ही समय में यह दो बात कैसे ? खिलते हुए कमल ने मानव के मूक प्रश्न को समझा और उसका समाधान दिया—

एक ही समय, एक के लिए प्रातः काल है तो दूसरे के लिए संध्याकाल है । क्योंकि समय किसी में जुड़ा हुआ नहीं है । जिस समय किसी की मृत्यु हो रही है, उसी समय कोई जन्म ले रहा है । जिस समय कोई धनवान हो रहा है, उसी समय कोई कंगाल हो रहा है । एक ही समय में जीवन में असंख्य परिवर्तन घटित हो रहे होते हैं । मानव

इन परिवर्तनों में ही जीने और मरने लगता है । इससे वह अपने आप को अलग नहीं हटा पाता, इसलिए वह गुड-मॉर्निंग के समय ही गुड-इवनिंग नहीं कर सकता । यही कारण है कि वह क्षण भर में सुखी और क्षण भर में दुःखी हो जाता है ।

लेकिन हम सदा अपने स्वभाव से कभी च्युत नहीं होते हैं । अतः हमारे लिए एक ही समय, दो रूपों में विभक्त हो जाता है । कमल की यह आवाज, सुवास के रूप में मानव के नासारन्ध्रों में प्रवेश करती हुई उसे कुछ क्षण के लिये सहज सुख का आभास करा उठी ।



हृदय की शोभा हार से होती है,
 घर की शोभा परिवार से होती है ।
 परन्तु जीवन की शोभा तो, गुरुवर
 तुम्हारे ही दृढ़ आधार से होती है ॥

लौ को जलने के लिये दीपक का सहारा चाहिये,
 मीन को तिरने के लिये पानी का सहारा चाहिये ।
 जीवन नैया को पार करने के लिये मुझको,
 हे नरपुंगव नानेश पूज्यवर ! तुम्हारा सहारा चाहिये ॥

प्रकृति भी मुखर हो उठी]

[४१

(३४)

हाथी और कुत्ता

हाथी अपनी मस्त चाल से चला जा रहा था । उसका ध्यान किसी की तरफ नहीं था । वह अपनी धुन में ही मस्त था । पर तुच्छ प्राणी कुत्ते से यह सहा नहीं गया । वह सोचने लगा—यह भीमकाय प्राणी कहां से आ गया और फिर मेरी गली में बड़ी मस्ती से चला आ रहा है । इसे जरूर यहां से भगाना चाहिए । नहीं तो यह मेरी गली में अधिकार जमा लेगा । पर मैं अकेला तो इससे लड़ नहीं सकता । क्योंकि यह बहुत भारी दिखता है । अतः मैं अपने साथियों को इकट्ठा करके फिर लड़ूं । कुत्ते ने आवाज लगा कर अपने साथियों को इकट्ठा कर लिया और सब मिलकर हाथी के पास जाकर भौं कने लगे - अरे ए कालेकलूटे हाथी ! क्यों घुस आया तू हमारी गली में, भाग जा यहां से, अन्यथा हम तुझे मार गिराएंगे । फिर से यहां आना भुला देगे । इस प्रकार वे भौं भौं करने लगे ।

हाथी जो अपनी मस्त चाल से चल रहा था । जब उसने कुत्ते की यह भौं भौं सुनी तो सोचा—कौन है ये जो मुझे ललकार रहे है । हाथी ने अपनी सूंड उठाई और कुत्ते की तरफ आंख घुमाई । पर हाथी को अपनी तरफ

देखते हुए देखकर कुत्ते दुम उठा कर भाग उठे । हाथी ने देखा—रे, जो मेरे देखने मात्र से भाग जाते हैं, वे मच्छर मेरा क्या बिगाडेगे । वस हाथी उनकी बातों का कुछ भी प्रतिकार न कर अपनी चाल से चलता रहा । कुत्ते फिर भौंकने लगे । अब तो हाथी ने आख उठाकर भी नहीं देखा कुत्ते केवल भौंकते, पर पास में नहीं आ सके । हाथी पर उनके भौंकने का अब कुछ भी असर नहीं हुआ ।

सच है समझदार व्यक्ति, महान् पुरुष कभी भी तुच्छ व्यक्तियों की अनर्गल बकवास का जबाब नहीं देते ।



खाना खाना सरल है, पचाना है मुश्किल,
 धन चाहना सरल है, कमाना है मुश्किल ।
 दीक्षित होना सरल है, निभाना है मुश्किल,
 ज्ञान पाना सरल है, टिकाना है मुश्किल ॥



बोलना सरल है, सुनना है मुश्किल,
 तोड़ना सरल है जोड़ना है मुश्किल ।
 चौरासी लाख योनियों में आत्मा को,
 घुमाना सरल है, खोजना है मुश्किल ॥

नासमझ कौन ?

हांडी में फंसे हाथ को निकालने में असमर्थ बन्दर चीऊं र करने लगा ।

हुआ यों कि मटकी में चने पड़े हुए थे । जिसे देखकर बन्दर के मुंह में पानी आ गया और वह उन्हे पाने के लिये ललक उठा । क्रुदता-फांदता पहुंचा वहां पर और मटकी में हाथ डालकर चनों से मुट्ठी भर ली । किन्तु मटकी का मुंह छोटा होने से हाथ वापिस नहीं निकल रहा था ।

बन्दर की यह हालत देखकर प्राणी जगत ने सर्वश्रेष्ठ समझदार कहलाने वाला आदमी हसा और बोला—अरे नासमझ बन्दर ! तुम्हारे लोभ ने ही तुम्हारा हाथ जकड़ रखा है । जरा चने कम करो, हाथ बाहर निकल आएगा ।

किन्तु बन्दर वह करने के लिए तैयार नहीं था तो आदमी उसकी मूर्खता पर हसने लगा ।

आदमी को अपनी हंसी उड़ाते हुए देखकर बन्दर चिऊका—अरे समझदार इन्सान ! यह ठीक है कि मैं तो

नासमझ हूँ, इसलिए फस गया हूँ, पर तुम तो समझदार हो । आश्चर्य ता यह है कि तुम्हारा हाथ ही धन दौलत ऐश्वर्य को पाने के लिए जकड़ा हुआ है । तुम अधिक से अधिक दौलत पाने के लिए अपने पूरे जीवन को दुःख के संसार में जकड़ते जा रहे हो । बताओ आज तक भी किसी ने दौलत की पकड़-जकड़ से सुख पाया है ? सच्चाई में तो उत्तर यही होगा-नहीं । जब तुम इतने समझदार होकर के भी उसे नहीं छोड़ सकते हो तो तुम ज्यादा नासमझ हो या मैं ?

यह कहने के साथ ही बन्दर ने एक भटका मारा-मटकी फूट गई और वह चने लेकर भाग गया ।

बन्दर के द्वारा यह कट्टु सत्य को सुनकर दुनिया के श्रेष्ठ प्राणी मानव का मस्तक झुक गया ।

❀

तिल का ताड़ बना सकता है आदमी,
 बात का बतगड़ बना सकता है आदमी ।
 प्राणियों में श्रेष्ठ बनता है, पर
 फूल को भी काटा बना सकता है आदमी ॥

❀❀

❀❀

आकाश सभी का एक समान आधार होता है,
 सर्वज्ञो के ज्ञान का एक समान विस्तार होता है ।
 शिष्य अविनीत हो या विनीत,
 सुगुरु का तो एक समान व्यवहार होता है ॥

चातक शिशु का निश्चय

सूर्य अपने तीव्र तेज के साथ भूमि को सतप्त कर रहा था । वन्य जगत् के प्रायः समस्त पक्षी प्यास को शांत करने के लिये बार-बार सरोवर की ओर उड़ान भर रहे थे । लेकिन आश्चर्य ! चातक इतने दिनों से, महीनो से प्यासा होकर भी सरोवर की ओर उड़ान भरने का रुख भी नहीं कर रहा था ।

पक्षियों को प्यास बुझाते हुए देखकर आखिर शिशु चातक का मन विह्वल हो उठा और वह भी पानी पीने के लिए तडप उठा । उसने बड़े ही कातर ढंग से अपनी मा चातकी को निहारा । बच्चे की इस तडफन को और सरोवर पर जाकर पानी पीने की मौन मांग को चातकी समझ गई । उसने बड़े ही प्यार से कहा—पुत्र ! क्या तुम अपनी वंश-परम्परा को तोड़ोगे ? आज तक किसी भी चातक ने भूमि पर पड़ा पानी नहीं पीया । उसने तडफ-तडफ कर मर जाना पसंद किया । किन्तु भूमिगत पानी नहीं पीया । पुत्र ! तुम यह निश्चय करो कि पानी पीऊंगा तो वर्षा का ही, आकाश से टपकते पानी को ही पीऊंगा ।

अन्यथा मर जाऊंगा । तुम्हारा यह निश्चय जरूर रग
लाएगा । बादल बरसेंगे और तुम्हारी प्यास बुझेगी ।

बच्चे को मा के वचनो से जोश आ गया और सब
तरफ से आशाएं छोड़कर, आकाश की तरफ ही टकटकी
लगाए स्थिर हो गया । उसके निश्चय ने चमत्कार कर
दिखाया और रिमभिंभ-रिमभिंभ करता पानी आया ।

चातकी की तरह ही आदमी भी सभी ओर से सम्बन्धो
को तोड़कर मन - वचन - काया से प्रभु की भक्ति में तल्लीन
हो जाता है तो उसमें भी परमात्म स्वरूप उभर आता
आता है । क्या हम चातक जैसे पक्षी से शिक्षा नहीं लेंगे ?

❀

महान् वह नहीं होता जो अपने ही स्वार्थ में गिरा
रहता है.

विद्वान् वह नहीं होता जो उन्माद में ही भरा
रहता है ।

धवल कीर्ति का विस्तार यो ही नहीं होता पुरुषो,
धनवान वह नहीं होता जो मात्र स्वार्थ में ही
धरा रहता है ॥

❀

आज नए-नए साहित्यो की भरमार है,

आज नए-नए विचारों का उभार है ।

आचार और व्यवहार के तम्बू उखड़ते जा रहे है,

आज नए-नए परिवर्तनों का ही विस्तार है ॥

प्रकृति भी मुखर हो उठी]

[४७

(३७)

ड्राइवर और गाड़ी

तीव्र और वेग के साथ चल रही कार में बैठे मुन्ने ने पापा से पूछा—पापा! गाड़ी इतनी तेज कैसे चल रही है?

पापा ने कहा—मुन्ना ! गाड़ी का ड्राइवर गाड़ी के एक्सीलेटर को दबाए हुए है इसलिये गाड़ी तेज चल रही । तो पापा ! कार इधर-उधर खड्डे में नहीं गिरती, सीधी सड़क पर कैसे चल रही है ? मुन्ने के इस प्रति प्रश्न को सुनकर उसके पापा ने कहा—बेटे ! गाड़ी का स्टेयरिंग ड्राइवर के हाथ में है । ड्राइवर जब तक सजगता पूर्वक उसे संभाले हुए है । तब तक गाड़ी रोड पर चलती रहेगी । ड्राइवर की थोड़ी सी असावधानी गाड़ी को और गाड़ी में बैठने वाले लोगों के जीवन को खतरे में डाल सकती है ।

ठीक इसी प्रकार गुरु शिष्य को समझाते हैं—इस शरीर रूपी गाड़ी का ड्राइवर चेतन है । जब तक चेतन सजग है, तभी तक गाड़ी व्यवस्थित चल सकती है । चैतन्य आत्मा की थोड़ी-सी असावधानी, जीवन की गाड़ी को अधः पतन में ढकेल देती है ।

❀ ❀

(३८)

“हीटर और एयर कंडीशन”

हीटर और एयर कंडीशन दोनो ने मिलकर पावर हाउस से फरियाद की। आपने हम दोनों का रूप अलग-अलग क्यों बना दिया ? हीटर कहता है मुझे मे से उष्मा ही निकलती है, जिससे इन्सान मुझे गर्मी में तो चाहता ही नहीं है, एयर कंडीशन कहता है, मेरे से ठण्डक ही ठण्डक निकलती है। इस कारण इन्सान सर्दी में मुझे नहीं चाहता है कितना अच्छा हो कि आप हम दोनों को सर्दी में उष्मा देने वाला एव गर्मी में ठण्डक देने वाला पावर दे दे। ताकि हम दोनों अवस्थाओं में काम आ सकें।

हीटर और एयर कंडीशन की बात सुनकर पावर हाउस ने कहा—देखो भाइयो ! मैं जो पावर हीटर को देता हूँ। वही पावर एयरकंडीशन को भी देता हूँ। मैं तो एक समान पावर देता हूँ। मेरे पावर में कोई ठण्डापन या उष्णता नहीं होती यह तो तुम्हारी मशीन ही ऐसी है कि तुम मेरे पावर को अपने अपने रूप में बदल लेते हो, यह दोष मेरा नहीं तुम्हारा ही है। तुम्हें अपनी पात्रता-योग्यता बदलानी होगी।

प्रकृति भी मुखर हो उठी]

[४६

ठीक इसी प्रकार हर प्राणी में परमात्मशक्ति समान रूप से रही हुई है । पर कर्मों के विक्षेप से सभी प्राणी अलग-अलग रूप में दिखाई देते हैं । परमात्म रूप में कोई असमानता नहीं है । पर जब तक कर्मों का विक्षेप दूर नहीं हो जाता तब तक परमात्म की अभिव्यक्ति नहीं हो सकती । इसीलिए अपना ही संशोधन करना होगा । अपनी पात्रता-योग्यता इस रूप में बनाए कि हम में परमात्मा की पूर्ण अभिव्यक्ति हो जाय ।



म्यान है तो तलवार भी होनी चाहिये,
 आकार है तो निराकार भी होना चाहिये ।
 भक्ति करने के लिये मेरे उपासकों !
 भक्त है तो भगवान् भी होना चाहिये ॥



टूटा हुआ सोना भी जोड़ दिया जाता है,
 जुड़ा हुआ दिल भी तोड़ दिया जाता है ।
 पर बुद्धिमानों के द्वारा जग में,
 टूटा हुआ दिल भी पुनः जोड़ दिया जाता है ॥

“संघर्ष नदी और समुद्र का”

तटानुबंधित नदी ने जब देखा कि समुद्र बिना किसी तट के फैलता चला जा रहा है और हजारों तरंगे उछालता हुआ ठाठे मार रहा है । उसे न कोई कहने वाला है और नही कोई पूछने वाला है । और मुझे दोनों तटों ने बांध रखा है । कितना अच्छा हो कि मैं भी समुद्र की तरह विराट् रूप धारण कर लूं । और समुद्र की विराट्ता को विध्वंस कर दूं । बिना अपनी औकात को देखे नदी भिड़ पड़ी समुद्र से, और बहुत देर तक समुद्र से संघर्ष करती रही । पर आखिर तो हारना ही था ।

नदी ने समुद्र से भिड़कर अपना अस्तित्व भी खत्म कर दिया । चौबेजी, छब्बेजी बनने गए तो दुब्बेजी ही रह गए । नदी का मीठा पानी भी खारा हो गया । जब तक वह तटानुबंधित थी, तब तक उसका जो महत्व लोगों की दृष्टि में था, वह भी खत्म हो गया । पहले लोग उसके पानी को बहुत पीते थे, क्योंकि वह मीठा था । पर नदी ने समुद्र से संघर्ष कर अपने मीठेपन को भी खत्म कर दिया । अब उसे कोई पूछने वाला नहीं रहा ।

कई महत्वाकांक्षी व्यक्ति अपनी स्थिति को नहीं सम-
झते हुए अपने आपको बड़ा बतलाने के चक्कर में बड़े-बड़े
व्यक्तियों से संघर्ष कर बैठते हैं। इस संघर्ष में निश्चित
रूप से उनकी विजय तो नहीं होती, बल्कि और उन्हें मुह
की खानी पड़ती है। ऐसे व्यक्ति पूर्वापेक्षा और अधिक निम्न
स्तर की ओर बढ़ जाते हैं।

जिस प्रकार पहाड़ से टकराकर कोई व्यक्ति अपना
कल्याण नहीं कर सकता, वैसे ही अपनी औकात से अधिक
महत्वाकांक्षा रखने वाला व्यक्ति कभी भी जिन्दगी में सफल
नहीं हो सकता। यदि जिन्दगी को सुखमय-शान्तिमय बनाना
है तो मर्यादा के तटों में रहकर चलना होगा—जिससे निर-
न्तर सफलता प्राप्त हो सके।



बीती बातों का रोना अब मत रोइये,
रक्त से रंजित कपड़े को रक्त से मत धोइये।
भौतिकता के रंगमंच पर आकर के,
अमूल्य क्षणों को अब प्रमाद में मत खोइये ॥

जो पार करे गुणस्थानों को उसे उत्थान कहते हैं,
पर हित में खपादे अपने को उसे महान् कहते हैं।
मनुष्य तो बहुत हैं दुनियां में पर,
पर पीड़ा अपनी समझें उसे सही इन्सान कहते हैं ॥

संगति किसकी करे ?

बड़ों से संगति करो पर उससे नहीं जिससे अपनी प्रतिष्ठा ही मिट्टी में मिल जाय । नदी ने देखा समुद्र बहुत विशाल, विराट एव व्यापक है । अपने उदर में अनेक रत्न मणि-माणिक्य सजोए हुए है । समुद्र की विशालता किसी से नापी नहीं जा सकती । गहरा भी इतना है कि सबको अपने में पचाने की क्षमता रखता है । मुझे अवश्य ऐसे व्यक्ति से संपर्क साधना चाहिए । नदी ने समुद्र के गुण दोष की पूरी समीक्षा किये बिना ही समुद्र से संपर्क करना प्रारम्भ कर दिया । जब तक सामान्य मैत्री रही, तब तक तो सब ठीक ठाक चलता रहा, पर जब नदी ने समुद्र से घनिष्ठता के लिये हाथ बढ़ाया तो समुद्र ने एक ही झटके में पूरी की पूरी नदी को अपने में समा लिया । अब नदी का कोई अस्तित्व हो नहीं रहा । न नाम और न ही कोई काम, उसकी सारी प्रतिष्ठा खत्म हो गई ।

नदी की तरह कई व्यक्ति गुण-दोष का विचार किये बिना ही कई व्यक्तियों से इतना अधिक सम्पर्क बढ़ा लेते हैं कि जिससे उनकी प्रतिष्ठा भी मिट्टी में मिल जाती है ।

बड़ों से सम्पर्क करना अच्छा है पर बड़ा आदमी कैसा बड़ा हो, यह जान लेना आवश्यक है ।



(४१)

“दीपक और भास्कर”

कमरे के एक कोने में टिमटिमाते दीपक को देखकर सूर्य ने ललकारा—अरे मच्छर ! क्या औकात तेरी, कहाँ दुबका है अन्दर एक कोने में जाकर और वहाँ भी पूरा प्रकाश नहीं दे पा रहा है । देख मुझे, स्वतन्त्रता के साथ आकाश में घूमकर पूरे अंग-जग को प्रकाशित कर रहा हूँ । तुम्हारी नन्ही सी जान को तो एक हवा का झोंका भी खत्म कर सकता है । पर मेरा, हवा तो क्या, संवर्तक जैसा भयंकर तूफान भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता । मेरे अस्तित्व से पूरी दुनियां प्रभावित है । मेरे बिना तो दुनियां का काम ही नहीं चल सकता ।

अभिमान के वश होकर सूर्य न मालूम क्या-क्या कहता चला गया । उसे भान नहीं रहा ।

पर दीपक ने बड़ी ही शान्ति के साथ टिमटिमाते हुए भास्कर को, संबोधित किया—सूर्य नारायण ! आप जो कुछ भी फरमा रहे हैं, वह सत्य है, आपके प्रकाश के मामले में तो गेर के सामने मच्छर तुल्य भी हूँ । कहाँ आपका विशाल प्रकाश और कहा मेरा प्रकाश । पर एक बात तो

जरूर है जो काम मैं कर सकता हूँ वह काम आप नहीं कर सकते ।

दीपक की बात सुनकर सूर्य को ताव आ गया और वह प्रचण्डता के साथ प्रकाश फैलाता हुआ बोला—अरे ओ पिद्दी तेरे मे ऐसी क्या विशेषता है कि जो तुम कर सकते हो, वह मैं नहीं, जरा बतला तो सही ?

इतने में बीच में ही आदमी आ पहुँचा और उसने चुपचाप टिमटिमाते दीपक की लौ का, बुझे अनेक दीपकों की लौ से सस्पर्श कराकर उन्हें भी प्रकाश युक्त बना दिया और घर भर को दीपको से सजा दिया । आदमी के काम करके चले जाने के बाद दीपक ने बड़े ही शान्त भाव से सूर्य से कहा—सूर्य देव ! देखा आपने अभी क्या हुआ ? सूर्य बोला—क्या हुआ कुछ भी तो नहीं । अरे सूर्य देव ! देखा नहीं आपने, मेरी ज्योति से मिलकर अनेक अप्रज्ज्वलित दीप जगमगा उठे । मेरे जैसे प्रकाशमान हो गए । क्या आप भी अपनी तरह किसी दूसरे को सूर्य बना सकते हो ।

यदि नहीं तो फिर आपकी सारी विशेषताएं, इस विशेषता के पीछे दब जाती है ।

जो दूसरों को अपने समक्ष बनाएं वही वास्तव में महान् है ।



नर्तकी और सितार

नृत्य करती हुई नर्तकी से किसी ने पूछा—जब तुम नृत्य करना प्रारंभ करती हो, तब तो बहुत धीरे-धीरे करती हो, पर जब तुम्हारे नृत्य के साथ सितार के तार झनझनाने लगते हैं, तबले पर थाप लगती है और ज्यो-ज्यो सितार के तार तेजी से झनझनाने लगते हैं, तबले तेजी से बजने लगते हैं, त्यो-त्यो-तुम्हारा नृत्य भी तेज होने लगता है और ज्यो-ज्यों सितार के तार धीरे पड़ने लगते हैं, त्यों-त्यों तुम्हारा नृत्य भी धीरे होने लगता है और ज्यों ही सितार की आवाज बंद हुई नहीं कि तुम्हारा नृत्य भी बंद हो जाता है।

आखिर ऐसा क्यों ? नर्तकी ने पूछने वाले को बहुत ही सहज रूप से समझाया—बंधुवर ! यह सत्य है कि मैं सितार की झनकार के साथ ही नृत्य करती हूँ। बिना सितार की झनकार के नृत्य नहीं हो सकता। सितार की झनकार का मेरे मन पर एक ऐसा असर होता है कि स्व-चालित यंत्र की तरह मेरे पैर अपने आप थिरकने लगते हैं और मैं अपना भान भूलकर नाचने लगती हूँ। सितारों की मधुर झनकार नाचने के लिए मुझे विवश कर देती है।

आदमी का मृदुल व्यवहार सामने वाले व्यक्तियों को निश्चित रूप से आकर्षित कर लेता है।

मृदुल व्यवहार से बड़े से बड़े व्यक्ति को भी आकर्षित किया जा सकता है।

❀

(४३)

शेर और कुत्ता

कुत्ते के भौकने और शेर के दहाड़ने में बहुत अन्तर है। कुत्ते के भौकने का सामना किया जा सकता है, पर शेर के दहाड़ने का नहीं।

एक बार एक साहसी कुत्ता जंगल में जा पहुँचा। वहाँ उसने झाड़ियों में से एक विगल आकृति देखी तो उसे लगा कि यह कौन है? लगभग रूप रंग में तो मेरे जैसा ही दिखता है, पर आकार में मेरे से बहुत बड़ा है। कुत्ते ने ताकत आजमाने की दृष्टि से भौकना प्रारंभ किया। सोचा—देखते हैं कि इस मेरे सदृश भारी भरकम शरीर में कितनी ताकत है? उस विचारे को क्या मालूम कि यह मेरे सदृश दिखते हुए भी बहुत विचक्षण एवं शक्ति संपन्न है, कुत्ता नहीं, शेर है। जब शेर ने कुत्ते के भौकने की आवाज सुनी तो सोचा—यह मच्छर यहाँ कहाँ आ टपका और फिर भौं भौं करके मेरा सामना कर रहा है। अभी बतलाता हूँ इसे कि मैं कौन हूँ?

शेर ने जोर से दहाड़ मारी, पूरा जंगल काप उठा, पर्वतों में मानो प्रकम्पन सा पैदा हो गया। सारे प्राणी भय

प्रकृति भी मुखर हो उठी]

५७]

से कांप उठे । बिचारे कुत्ते की तो घिग्घी बंध गई । उसने देखा रे यह तो महाशक्ति सपन्न है । इससे सामना करना मौत को आमंत्रण देना है । कुत्ता तो प्राण बचाने, दुम दबाकर भाग गया ।

शेर और कुत्ते में बाह्य रूप से भले कुछ सादृश्य दिखता हो पर इनकी वृत्ति में बहुत बड़ा अन्तर होता है । शेर की वृत्ति आक्रमणकारी को पकड़ती है पर कुत्ते की वृत्ति आक्रमणकारी को नहीं, अपितु उसके शस्त्र को ही पकड़ती है ।

अपने आपका इतना प्रदर्शन मत करो कि उतनी शक्ति ही अपने में न हो ।



बहना सरल है, रुकना है कठिन,
कहना सरल है, करना है कठिन ।
आज की दुनिया को देखते हुए,
मरना सरल है, जीना है कठिन ॥

पतंग और बालक

किशोर ने पतंग के कणिये बांधकर, उसके साथ डोरा लगाकर उसे बड़े परिश्रम से आकाश में उड़ाया । किशोर की मेहनत से पतंग आकाश की ऊंचाइयों को छूने लगा । बड़े बड़े भवन और बुद्धिमान् इन्सान सभी तो धरती पर रह गए । पर पतंग उन सबसे ऊपर उठकर निरभ्र आकाश का आनंद लेने लगा लेकिन किशोर के हाथ में पतंग की डोर होने से वह जब चाहता तब पतंग को इधर-उधर मोड़ देता था । ऊपर नीचे कर देता था ।

पतंग को यह परतंत्रता कतई पसंद नहीं आई । वह सोचने लगा कहा तो मैं इतना ऊपर पहुँच गया हूँ और कहा धरती का इन्सान मुझे अपने हाथों नचाता है । नहीं, मैं कभी भी इसके हाथों में नाचना पसंद नहीं करता, मैं तो अपनी इच्छानुसार आकाश में उन्मुक्त विचरण करूँगा ।

पतंग ने अपने आपको किशोर के बंधन से मुक्त बनाने के लिए हवा की लहरों के साथ एक झटका दिया और डोर के बंधन से मुक्त हो गया । अब वह अपनी इच्छानुसार उड़ने लगा । पर आश्चर्य कि अब आकाश की बुलन्दियों

को न छूकर निरन्तर नीचे की ओर आने लगा । पतंग ने बहुत प्रयास किया ऊपर उठने का । पर उसका सब प्रयास निरर्थक सिद्ध हुआ । आखिर वह समय भी आ गया । जब वह एक खड्डे में गिरकर अपने अस्तित्व को खो बैठा । उसका सारा अभिमान मिट्टी में मिल गया ।

इन्सान भी जब उन्नति की ओर बढ़ने लगता है तब यदि वह सही अनुशासन की डोर को बन्धन समझकर तोड़ देता है तो वह निश्चित रूप से जीवन की जिन ऊंचाइयों पर है, वहाँ से गिरकर फुटपाथ पर आ जाता है ।



तत्त्ववेत्ताओं को आज कोई कमी नहीं है,
राजनेताओं की आज कोई कमी नहीं है ।
आचरणहीन जीवन जीने वाले,
क्रान्तचेताओं की आज कोई कमी नहीं है ॥



आज का युवा विनाश के कगार पर खड़ा है,
आज का युवा विकारों के महाद्वार पर खड़ा है ।
संभल नहीं सका तो पतन है निश्चित,
आज का युवा विचारों के कच्चे तार पर खड़ा है ॥

मेंढक की बात-चीत

एक बार फूदकता-फूदकता समुद्रीय मेंढक कुएं मे आ पहुंचा । कुएं में पहले से ही एक मेंढक अपना अधिकार जमाए हुए बैठा था । जब उसने नये मेंढक को कुएं मे आते देखा तो उसके पास गया और पूछा—तुम कहा से आ रहे हो ? समुद्रीय मेंढक ने कहा मै समुद्र से आ रहा हूं । कुएं के मेंढक ने न तो कभी अपनी जिन्दगी मे समुद्र को देखा था और न ही उसका नाम सुना था । पहली ही बार सुना था । वह तो यही समझ रहा था कि अगर दुनिया मे सबसे बडा जलाशय है तो मेरा यह कुआ ही है । इससे बडा कोई जलाशय नही है । इसी विचार के कारण कुएं के मेंढक ने एक छोटी-सी छलाग लगाई और समुद्रीय मेंढक से बोला-- क्या इतना बडा है तुम्हारा समुद्र ?

तब समुद्रीय मेंढक ने कहा—नही, समुद्र तो इससे बहुत बडा है ।

कुएं के मेंढक ने थोडी और बडी छलाग लगाते हुए कहा—क्या इतना बडा है तेरा समुद्र ! तब भी समुद्रीय मेंढक ने कहा—नहीं, मेरा समुद्र तो बहुत बडा है ।

कुएं के मेंढक ने फिर तो पूर्व के किनारे से पश्चिम

के किनारे तक एक बहुत बड़ी छलांग लगाई और फिर पूछा—बोल बता, क्या इतना बड़ा है तुम्हारा समुद्र ?

तब हसते हुए समुद्रीय मेंढक ने कहा—अरे भाई ! समुद्र तो बहुत बड़ा है । उसे बतलाने के लिये तुम कितनी भी बड़ी छलांग लगा दो पर तुम उसकी सीमा- रेखा नहीं पा सकते ।

कुएं का मेंढक बोला—नहीं, मैं नहीं मानता कि समुद्र इतना बड़ा है । दुनियां में सबसे बड़ा तो मेरा कुंआ ही है । यदि तुम्हें मेरे कुएं से भी बड़ा समुद्र लगता है, तो जरा कूदकर बतलाओ कि कितना बड़ा समुद्र है ?

अब क्या बतलाए उस कुएं के मेंढक को ! क्योंकि समुद्र तो इतना बड़ा है कि मेंढक तो क्या, बड़े से बड़ा इन्सान भी नहीं नाप सकता कि समुद्र कितना बड़ा है । समुद्रीय मेंढक ने कहा - भाई ! मैं अपनी इन छोटी-छोटी छलांगों से कभी नहीं बता सकता कि समुद्र कितना बड़ा है ? बस इतना ही कह सकता हूं कि समुद्र बहुत बड़ा है ।

समुद्रीय मेंढक समझाते-समझाते थक गया पर कुएं के मेंढक के दिमाग में यह बात नहीं जमा सका कि समुद्र कितना विशाल है ? क्योंकि समुद्र की विशालता, कुएं का अल्प बुद्धि वाला मेंढक सोच भी नहीं सकता ।

इसी प्रकार अल्प-प्रज्ञा, अल्प-मति वाले को विशाल ज्ञान नहीं दिया जा सकता ।

❀

❀❀

(४६)

घट और पानी

घड़े के मुंह से पेट में पहुंचते पानी को देखकर घट अभिमान में आकर बोला—मेरे मुंह से पेट में धुसकर तू ठण्डा हो जाता है। यह सब मेरी वजह से है। यदि तुझे भीतर प्रवेश न दूं तो तू कभी ठण्डा नहीं हो सकता।

पानी ने कहा—घटराज ! बात तो तुम्हारी सच है कि तुम्हारे में प्रवेश करने से मेरे में शीतलता अधिक बढ़ जाती है। पर यह भी सत्य है कि मेरा स्वयं का स्वभाव भी शीतल होना है। उस शीतलता में आप सहायक बन जाते हो। यदि मेरा स्वभाव शीतल होना न हो तो मुझे ठण्डा नहीं कर सकते। क्योंकि आग का स्वभाव शीतल होना नहीं है। उसे कितना भी प्रयास करने पर शीतल नहीं किया जा सकता।

घट को पानी की बात नहीं सुहाई, क्योंकि वह तो यह मान रहा है कि मेरे कारण ही पानी ठण्डा होता है। पानी को ठण्डा मैं करता हूं। पर यह मेरा अहसान न मान कर दूसरी बात करता है। घट थोड़ा रौश में आगया और

प्रकृति भी मुखर हो उठी]

[६३]

बोला पानी को—चल हट, इतना करने पर भी तू मेरा अहसान नहीं मानता है, मैं तुम्हें अपने भीतर स्थान नहीं देता । थोड़ा-सा झटका हुआ कि मटके के नीचे एक सुराख हो गया, बस सारे घट ने उस सुराख के माध्यम से पानी को बाहर निकाल दिया । सोचा अब मालूम पड़ेगी कि ठण्डा कौन करता है उसे ?

पर यह क्या ज्यों ही पानी घड़े से बाहर निकला । इन्सान ने तुरन्त मटके को उठाया और एक तरफ फेंक दिया । क्योंकि अब वह भी कोई काम का नहीं रहा । अनेक टुकड़ों में विभक्त हो, फर्श पर पड़ा घट और फर्श पर आया पानी दोनों ही एक दूसरे का मुंह ताकने लगे ।

अपनी--२ ही बात को खींचने के कारण दोनों का गौरव मिट्टी में मिल गया ।

एक दूसरे को लेकर चलने वाला व्यक्ति ही जीवन की ऊंचाइयों को छू सकता ।

❀



युवाशक्ति एक दुधारी तलवार है,

जिधर चाहो उधर होता वार है ।

लक्ष्य न होगा तब तक उससे,

घातक परिणामों का ही विस्तार है ॥

(४७)

कछुए की वह रात

सरोवर का संपूर्ण भाग पूर्ण रूप से शैवालाच्छादित था, जिधर भी दृष्टिपात किया जाय, सभी ओर शैवाल ही शैवाल परिलक्षित होती थी ।

एक रात किसी बालक ने मनोरजन हेतु पत्थर का टुकड़ा सरोवर में फेंक दिया । छपाक की आवाज आई और पत्थर शैवाल की हरीतिमा को छेदता हुआ भीतर प्रवेश कर गया । ठीक इसी समय एक कछुआ उस छिद्र के सन्निकट ही शैवाल के नीचे इधर-उधर दौड़ लगा रहा था । पत्थर के कारण जब शैवाल में छिद्र हुआ तो कछुए ने उस छिद्र से अपना मुह बाहर निकाल कर देखा-उसे अत्यन्त ही सुखद आश्चर्य हुआ—अहो ! पूरा नभ - मण्डल चन्द्रमा और ताराओं से जगमगा रहा जिनसे सुखद-शीतल प्रकाश टपक रहा था—कितना शांत प्रशांत वातावरण । कछुआ बहुत देर तक देखता ही रहा । उसके मन में विचार आया कि आज तक मैं तो यही समझ रहा था कि ससार केवल इस सरोवर तक ही सीमित है । पर आज मुझे ज्ञात हो रहा है कि नहीं, जो हम समझ रहे हैं उससे दुनिया

प्रकृति भी मुखर हो उठी]

[६५]

बहुत बड़ी है । क्यों, जो मैं देख रहा हूँ, वह अपने पारिवारिक जनों को भी बतलाऊँ । यह सोचकर कछुए ने अपनी गर्दन अन्दर की ओर पारिवारिक लोगों के पास पहुँचा । कहने लगा—चलो मे आपको बहुत ढाड़ी दुनिया बतलाता हूँ । जिसको आज तक हमने नहीं देखा देखकर आपको बड़ा मजा आएगा । पारिवारिक जन भी देखने के लिये उसके साथ चल पड़े । पर इधर छोटा सा छिद्र हवा के झोंको के कारण पुनः बंद हो गया । अब वह कछुआ पूरे सरोवर में इधर से उधर घूमता है, पर उसे कहीं भी वह विशाल दुनिया देखने को नहीं मिली । बहुत घूमा, पर अब उसे वह दुनिया देखने को नहीं मिली । पारिवारिक लोगों ने भी समझा यह कहीं पागल हो गया लगता है । हम वृथा ही इसके पीछे चले आए ।

जिन्दगी में ऐसे महत्वपूर्ण क्षण बहुत विरल ही आते हैं । उन महत्वपूर्ण क्षणों को जो व्यक्ति परिवार, धन आदि की आसक्ति में खो देता है ! वह व्यक्ति कभी भी अगम लोक की विशिष्ट दुनिया को प्राप्त नहीं कर सकता ।

❀



धुंआ आकाश को काला बना देता है,

रंगों का संयोग विचित्र चित्रशाला बना देता है ।

कुसंग के परिणामों को समझो इस युग में,

दुर्जन सज्जन को अपने रंग में मिला देता है ॥

(४८)

इन्सान और फूल

मॉर्निंग वाक (Morning Walk) करने के लिए इन्सान प्रातःकाल उठा और बगीचे में घूमने के लिये निकल पड़ा । इधर-उधर घूम-घाम कर प्रकृति के सुरम्य सुवासित वातावरण का आनन्द लेने लगा, इसी बीच महकते मुस्कराते एक गुलाबी फूल के अति सन्निकट, पहुंचकर इन्सान ने देखा फूल के अन्दर सुवास तो बहुत अभिराम है पर छोटे-छोटे कृमि भी दौड़ रहे हैं । उसे देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि इतने सुन्दर अभिराम फूल में भी कीड़े हैं ।

जिस फूल को पाने के लिये इन्सान उसके पास पहुंचा था । उस पर कीड़े को देख कर वह मुह मोड़कर चल पड़ा । इन्सान को इस प्रकार जाते देख कर फूल मुस्कराया और बोला—ए सृष्टि के श्रेष्ठतम प्राणी इन्सान ! दुनिया में तुम सर्वाधिक श्रेष्ठ माने जाते हो । मेरे में सुगंध होते हुए भी कीड़े देख कर तुम मुह मोड़ रहे हो । पर जरा दूसरों को देखने की बजाय अपने को ही देखो तुम्हारे भीतर कितने कीड़े कुलबुला रहे हैं । बाहर से तुम अपना पाँश सुन्दर बना लो, पर अन्दर में स्वार्थ का कीड़ा कुलबुला रहा है,

प्रकृति भी मुखर हो उठी]

[६७

क्रोध का सर्प फुंफकार रहा है। मोह का मगर मुंह फैलाए हुए है। क्रोध की चिंगारिया भड़क उठी है। तुम्हारे भीतर कितने बड़े-र भयानक विषैले जन्तु घूम रहे हैं। उनमें से एक दुर्गुण रूप जन्तु भी जीवन को तबाह कर सकता है।

जहां गुण होते हैं वहां अधिकांशतः कोई न कोई दुर्गुण भी मिलता है। सभी प्रकार से पूर्ण तो कोई विरल ही व्यक्तित्व होता है। इसलिये तुम जरा अपना देखो। तुमने अपनी दृष्टि को दुर्गुणदर्शी बनाली है। प्रत्येक के दुर्गुण ही देखते हो इसलिये दुःखी हो। पर दृष्टि को सद्गुणदर्शी बनाओ तो सदा हमारे जैसे मुस्कराते रहोगे। पुष्प की अन्तः पुकार को इन्सान सुनता ही रह गया।

❀

❀ ❀
❀ ❀

बिना घर्षण के आग नहीं निकलती,
बिना कण्ठों के राग नहीं बनती।
यही कारण है कि बहुत चाहने पर भी,
बिना सुसाधना के मांग नहीं फलती।

(४६)

“बीज का वृक्ष”

बीज अपनी सारी स्वतन्त्रता को छोड़कर वृक्ष का विशाल रूप धारण करने के लिये भूमि में बैठ गया । भूमि की भयंकर उष्मा से भी वह नहीं घबराया । प्रस्फुटन हुआ और वही बीज अंकुरण के रूप में दुनियाँ के बीचों-बीच चला आया । अब तो मेघ ने पानी बरसा कर उसका सींचन करना प्रारम्भ कर दिया । हवा ने अनुकूल रूप में वहकर उसके प्राणों में ताजगी भर दी । पूरी प्रकृति ने अब उसका सभी तरह से सहयोग करना प्रारम्भ कर दिया ।

बीज उसी उत्साह के साथ आगे बढ़ता चला गया । और एक दिन वह आया कि उसके मन की मुराद पूरी हो गई । वह विशाल वृक्ष रूप में उभर कर आकाशी-ऊँचाइयों को छूने लगा । वृक्ष की इस विशालता को देखकर फुट-पाथिया इन्सान बोला—छोटा सा बीज पड़े पड़े ही हवा पानी को पाकर बढ़ गया है । और अब तो विशाल वृक्ष बन गया है ।

आदमी की बात को सुन वृक्ष ने हवा में लहराते हुए मूक अभिव्यक्ति दी । भोले इन्सान ! क्या कह रहा है तू ।

प्रकृति भी मुखर हो उठी]

[६६

मुझे वीज से विराट् वृक्ष बनने में बहुत कष्ट सहने पड़े है। सब कुछ सहने के बाद ही प्रकृति ने मुझे सहयोग देकर आगे बढ़ाया है ? तेरी यह कल्पना कि ऐसे पड़े पड़े ही वृक्ष बन गया—कोरी कल्पना ही है। ऐसी कल्पना के कारण ही तुम्हारा विकास नहीं हो पाया है। विकसित होने के लिए पुरुषार्थ करना होगा। स्वच्छदता से हटकर सही लक्ष्य की ओर गति करनी होगी। तभी ऐसा विशाल रूप धारण किया जा सकेगा।

वृक्ष की इस अभिव्यक्ति ने आदमी की चेतना को जागृत कर दिया। और वह बढ चला पुरुषार्थ की दिशा में।



बिना दया के कोई इन्सान नहीं होता,
बिना तंतु के कोई परिधान नहीं होता।
आदर्शवादिता का नारा लगाने वालों,
बिना परमार्थ किये कोई महान् नहीं होता ॥



सुगंध के बिना फूल किसी काम का नहीं होता,
प्रकाश के बिना दीपक किसी काम का नहीं होता।
कैसा भी युग आ जाय भाइयो !
साधना के बिना साधक किसी काम का नहीं होता ॥

(५०)

“कीचड़ और कंजूस”

वर्षा के कारण कीचड़ ने गली-गली में अपना स्थान लिया । लोगो का आवागमन अवरुद्ध हो गया । कीचड़ में पैर न भर जाय, इस भय से लोग एक किनारे सटकर चलते । कीचड़ ने देखा—वाह ! मैं भी कितना महान् हूँ कि कोई भी व्यक्ति मेरे ऊपर से नहीं निकल सकता । मेरा यह रूप मेरे लिये वरदान सिद्ध हो गया ।

इधर कजूम भी बोला—वाह मे भी कैसा हूँ कि मैंने ऐसी वृत्ति बना रखी है, अपनी, कि कोई भी व्यक्ति मेरी संपत्ति नहीं हडप सकता है । यदि मेरी कंजूस वृत्ति न होती तो मेरी संपत्ति भी कभी की समाप्त हो जाती ।

कीचड़ और कजूस दोनों अपनी-अपनी वृत्ति पर खुश होने लगे । क्योंकि कीचड़ ने गन्दगी फैलाकर सब जगह मच्छर ही मच्छर फैला दिये । जिनके कारण से इन्सान परेशान हो गया ।

कजूस ने भी इधर-उधर से न्याय-अन्याय करके पैसा इकट्ठा कर लिया और तिजोरी में भर लिया । और इधर आदमी हैरान हो गया—गरीबी के कारण । भू-
लगा ।

प्रकृति भी मुखर हो उठी]

इन्सान को दुःख देने वाले इन लोगो की आदत प्रकृति को सहन नहीं हुई। सूर्य ने दूसरे दिन से ही तेजी से तपना प्रारम्भ कर दिया। सूर्य की भयंकर उष्मा को कीचड़ सहन नहीं कर सका और कुछ ही समय में सूखकर अपनी जिन्दगी को खो बैठा।

कंजूस के पेट में दर्द पैदा हो गया। सोचा यों ही मिट जायगा। पर जब नहीं मिटा तो इधर-उधर से सामान्य उपचार करना प्रारम्भ किया। पैसा खर्च करने की उसकी आदत नहीं थी। सही उपचार के बिना दर्द बढ़ता चला गया और एक दिन ऐसा भटका लगा कि कंजूस अपना विशाल मकान लाखों की संपत्ति परिवार सब कुछ छोड़कर यहा से चल बसा।

दुर्गुणी की इहलोक-परलोक दोनों जिन्दगियां विगड़ती हैं।



बोलना सरल है, सुनना है मुश्किल,

तोड़ना सरल है जोड़ना है मुश्किल।

चौरासी लाख योनियो मे आत्मा को,

धुमाना सरल है, खोजना है मुश्किल ॥

वंश-दल का घर्षण

जंगल में बहुत तेज तूफान चलने लगा । बड़े बड़े वृक्ष जड़ मूल से उखड़ कर गिरने लगे । कुछ पौधे नीचे झुक गये और उन्होंने तूफान को अपने से ऊपर होकर जाने का स्वतन्त्र अधिकार दे दिया । इधर पहाड़ पर खड़े बाँस के झाड़ भी तेजी से भिड़भिड़ाये । रक्षा करने के लिए अपनी वे एक दूसरे में सामने का प्रयत्न करने लगे । पर कोई बाँस एक दूसरे की रक्षा करने के लिए समर्थ नहीं हुआ । ज्योंही बास के पास कोई बास आया तो वह उसे धक्के मार कर हटाने लगा । परिणाम स्वरूप एक भाई एक भाई को आश्रय न देकर परस्पर संघर्ष करने लगे । संघर्ष में वे अपने आपको भूल गये । और इतनी तेजी से भिड़ गये कि परस्पर की घर्षण से आग पैदा हो गई । उस आग ने एक दूसरे को जलाना प्रारम्भ कर दिया । अब क्या था, आग को भोजन मिल गया, और वह बढ़ती ही चली गई । देखते ही देखते सारे वंश दल को जलाकर उसने राख कर दिया । अपने इस परिवर्तन को देखकर सब बाँस आंसू बहाने लगे । पर दो के संघर्ष में तीसरा लाभ उठाता ही है ।

समझदार इन्सान भी इसी तरह भगड़ पड़ते हैं। भाई-भाई में ना कुछ बात के पीछे इतना बड़ा संघर्ष हो जाता है कि कोर्ट कचहरी पहुँच जाते हैं। और इस संघर्ष में दोनों की सम्पत्ति स्वाह-समाप्त होने लगती है। और जब परिणाम आता है तब आखे खुलती है। इस तरह का संघर्ष दोनो को नीचे गिरा देता है।

भाई को भाई आश्रय देना सीखे, पर बांस की तरह संघर्ष कर हानि उठाकर अपने विनाश को आमन्त्रण न देवें।



सर्वतक तूफान जैसा कोई तूफान नहीं होता,
स्वयंभू समुद्र जैसा कोई समुद्र नहीं होता।
दीनों के भरते आंसुओं को पोंछना सीखो,
परोपकार जैसा कोई उपकार नहीं होता ॥



आज धन ही धन की दोड़ लगी है,
आज एक दूसरे की होड़ लगी है।
आज का मानव नहीं समझ रहा हैं कि,
आज विनाश की ओर ही घुड़दौड़ लगी है ॥



पतंगिये की भिन्नभिन्नाहट

हजार पावर के बल्ब की चमचमाती रोशनी आकर्षित हो पतंगिया उसे पाने के लिए उस पर भ्रंपापात करने लगा । ज्यो ही उसने बल्ब पर भ्रंपकिया त्योही बल्ब की उष्मा ने उसे सतप्त कर भूमि पर पटक दिया । दूर से आकर्षक लगने वाले बल्ब की सन्निकटता घातक सिद्ध हुई । कुछ समय के अनन्तर जब पतंगिये को होश आया । होश आने के साथ ही उसकी दृष्टि पुनः उसी बल्ब पर गिरी, जिससे की उसकी यह दुर्दशा हुई थी । अपनी दुर्दशा को भूलकर फिर से उमे पाने के लिए नादान पतंगिये ने भ्रंपापात किया । इस वार फिर वही हुआ जो होना था । बल्ब की उष्मा ने फिर सतप्त किया और उठाकर भूमि पर पटक दिया । कुछ देर बाद फिर पतंगिये को होश आया तो उसने फिर उसी बल्ब का प्रकाश पाने के लिए सब कुछ भूल-भालकर उडान भरी और एक बार फिर से उस पर जा पहुँचा । इस वार भी वही हाल हुआ, जो होना था । पतंगिया भूमि पर आ पडा और अब फिर उस बल्ब पर जाने के लिए छटपटाने लगा । किन्तु बार-बार के भ्रंप से सतप्त हो जाने के कारण उसकी शक्ति खत्म हो गई । अब उसमे भ्रंप करने की ताकत नही रही । अब वह छटपटाता हुआ जिन्दगी के अन्तिम क्षण गिन रहा था ।

पतंगिये की इस मूढता को देखकर उसी प्रकाश से लाभ उठाने वाले समझदार इन्सान से रहा नही गया । इन्सान प्रकृति भी मुखर हो उठी]

ने उस छटपटाते पतंगिये को इ गित करके कहा—अहो ! यह कैसा ना समझ प्राणी है कि जिसने बल्ब पर भंपापात करने से बार-बार चोट खाई है । दुखी हुआ है उसी बल्ब को पाने के लिए भंप करते—करते अब स्वयं ही अपने प्राण दे रहा है ।

इन्सान की बात सुनकर अन्तिम श्वास गिनता पत्त-गिया एक बार भिनभिनाया और जाते-जाते आदमी को शाश्वत सत्य संदेश सुना गया—हे सृष्टि के श्रेष्ठ समझे जाने वाले इन्सान ! निश्चित ही तुम मुझसे बहुत होगियार और बुद्धिमान हो । इसमें कोई सन्देह नहीं । मुझे तो यह ज्ञान नहीं था कि इस बल्ब से मुझे सन्तप्त होना पड़ेगा । मैं तो यही समझ कर कि इससे मुझे सुख प्राप्त होगा । इसीलिए बार-बार भंप करता रहा । पर तुम क्या कर रहे हो ? विषयों को पाने के लिए तुम्हारी दौड़ निरन्तर लग रही है । दिन रात एक कर रहे हो यह जानते हुये कि इन विषयों को यहीं छोड़कर जाना होगा और इसमें शाश्वत शान्ति भी प्राप्त नहीं हो सकेगी ।

फिर भी तुम इसकी आसक्ति में पडकर अपने अमूल्य जीवन को वर्वाद कर रहे हो । ठीक है मैं तो अज्ञानी हूँ ही, इसलिए बल्ब पर भंप करके अपने प्राण दे रहा हूँ क्योंकि मुझे नहीं मालूम था कि बल्ब मेरे लिए हानिकारक सिद्ध होगा पर तुम्हे तो विषय की हेयता मालूम है । उसके वाद भी तुम यदि उसी में आसक्त रहकर अपनी जिन्दगी वर्वाद करते हो तो बोला—कौन बड़ा अज्ञानी है ।

पत्तंगिये की इस भिनभिनाहट का यह संदेग इन्सान अब तक नहीं समझ पाया ।

मकड़ी का जाल

आदमी जब अपनी सुरक्षा के लिए जगलो में रहना छोड़कर घर बनाने लगा । तो सृष्टि का एक विचित्र प्राणी मकड़ी ने भी अपना घर बनाने का विचार किया । वह सोचने लगा जब आदमी रक्षा के लिए इतना बड़ा घर बना सकता है तो फिर मैं भी क्यों न अपने लिए घर बना सकती हूँ ? मैं भी ऐसा मजबूत और अभेद्य प्रकार वाला घर बनाऊंगा कि कोई भी उसमें प्रवेश न कर सके । आदमी भी देखता रह जाय । उसे भी ज्ञात हो कि बुद्धिमान वही नहीं है दुनिया में और भी प्राणी बुद्धि से उसकी समकक्षता वल्कि विशिष्टता रखते हैं ।

इधर तो इन्सान ने चूना-ई ट-पत्थर आदि एकत्रित करके मकान बनाना प्रारम्भ किया और कुछ ही महीनो में मकान बनकर तैयार हो गया । आदमी ने देखा मकान तो अच्छा बन चुका है पर इसमें प्रवेश करने के लिए शुभ मुहूर्त्त देखना होगा । वह पहुँचा सीधा ज्योतिषी के पास, मुहूर्त्त पूछने । मुहूर्त्त एक महीने बाद का निकला । आदमी ने मकान को यह सोचकर वन्द कर दिया । कि एक महीने

प्रकृति भी मुखर हो उठी]

[७७

बाद ही इसमें प्रवेश करूंगा । इधर मकड़ी ने अपना काम करना प्रारम्भ कर दिया । वह भी उसी मकान में प्रवेश कर गई । और सोचने लगी मुझे इतना बड़ा मकान तो बिना परिश्रम के ही मिल गया । अब इसके अन्दर ऐसा मकान बनाऊंगी कि जिसमें जाने के बाद मुझे कोई मार न सकें ।

यह सोचकर उसने जाल बनाना प्रारम्भ किया । कच्चे तारों का ताना-बाना किया और कुछ ही देर में एक मजबूत मकान-जाल का निर्माण कर लिया । जिसके अन्दर कोई भी प्रवेश न कर सके । मकड़ी ने सोचा, वस अब मैं शान्ति से रह सकूंगी । मकड़ी ने अपने मकान में प्रवेश किया । प्रवेश करके देखा कि अरे और तो सब तरफ से मकान मजबूत बन गया है पर यह रास्ता तो खुला है, जिस से मैंने प्रवेश किया है । अगर यह रास्ता बन्द न होगा तो कोई भी चला आयेगा । मुझे इसे भी बन्द कर देना चाहिए यह सोचकर नादान मकड़ी ने ताने बाने बुन कर बन्द कर दिया । जब उसका मकान सभी तरफ से पैक बन्द हो गया, तब वह सोचने लगी कि-अब मैं सभी तरफ से सुरक्षित हो गई हूँ । पर वह सुरक्षा कितनेक समय की थी । कुछ ही देर बाद जब मकड़ी को भूख लगी तो वह बाहर आने का सोचने लगी, पर उसने तो दरवाजा भी बन्द कर दिया था । अब बाहर कैसे निकले । जाले पर पैर लगाया तो वह उसी में फंस गई । पैर निकालने की बहुत कोशिश की पर जितनी कोशिश की, उतनी ही तेजी से मकड़ी जाल में फंसती चली गई । आखिर अपने ही बनाए जाल में तड़फ-तड़फ कर

उसने प्राण छोड़ दिये । जिसे सुरक्षा के लिए बनाया था, वही उसके लिए घातक सिद्ध हुआ ।

आदमी ने जब महिने भर बाद मुहूर्त्त आने पर मकान में प्रवेश किया तो जाले में मकड़ी को मरा पाया । उसने उसी समय भाड़ू उठाया और एक ही झपटे में जाल सहित मकड़ी को नीचे गिराया । लेकिन यह नहीं सोचा कि जिस प्रकार मकड़ी अपने ही जाल में फंस कर मर गई है । वैसे ही मैं भी इस मकान, परिवार, धन, दौलत, वैभव में आसक्त हो, शान्ति-शान्ति की चाहना करते हुये अज्ञान्त जीवन में ही चल पडूँगा । यह मेरा निर्माण मेरे लिए ही घातक सिद्ध होगा । मेरा एक भव नहीं अपितु भव-भव विगाड़ने वाला बनेगा ।

इन्सान यह समझे या ना समझे पर दुनिया के रंग मंच पर यह सब घटित हो रहा है । आदमी स्वय की मौत के लिये स्वय ही साधन जुटा रहा है ।



मानव ही अपने भाग्य का निर्माता है,
मानव ही अपने आपका प्रणेता है ।
क्या नहीं है मानव के भीतर,
मानव ही अपने आपका विधाता है

प्रकृति भी मुखर हो उठी]

(५४)

सर्प का सन्देश

सपेरे की वीन पर सर्प नाचने लगा । सपेरा जिस तरह सर्प को नचाना चाह रहा था । सर्प ठीक उसके इ गितानुसार ही नृत्य कर रहा था सर्प की इस दुनिया को देख कर आदमी बोला—कहाँ तो यह सर्प देवता कहलाता था । इसकी एक फुंकार ही लोगों को डराने के लिए काफी थी । आदमी डरकर इसकी पूजा करते थे । और कहा बेचारा आज सपेरे के इगारे पर नाच रहा है । पुंगी की सुरीली आवाज के वण में होकर इसने अपनी यह दुर्दशा बना ली है ।

आदमी की बात को सुनकर नाचते सर्प ने निःश्वास छोड़ते हुए कहा—हे समझदार इन्सान ! तुम्हारा कहना सर्वथा सत्य है । मैंने इस सपेरे की पुंगी के वण होकर अपनी यह दुर्दशा की है । यदि मैं इसके वण नहीं होता तो यह मेरी जहर की ग्रन्थि नहीं निकाल पाता और न ही मुझे नचा पाता । आज मैं अपने अज्ञान पर पश्चाताप कर रहा हूँ । पर जरा सोचो—तुम क्या कर रहे हो । तुम तो सृष्टि के सर्वाधिक बुद्धिमान प्राणी हो । तुम्हारी क्या दशा

हो रही है । मैं तो केवल एक कान के वश में हुआ, उसका परिणाम भोग रहा हूँ । पर तुम तो सभी इन्द्रियों के वश में होकर अपनी पूरी जिन्दगी ही बर्बाद करने पर तुले हो । कामोत्तेजक नित नये गाने सुनने के लिए कान सदा उत्सुक रहते हैं । आँख से नये-नये चित्र देखने को तैयार रहते हो । नाक से सुगन्ध सूँघने के लिए उतावले रहते हो मुँह में बढ़िया से बढ़िया मिठाई खाना चाहते हो । शरीर से अच्छा में अच्छा स्पर्श चाहते हो । तुम्हारी पाँचो इन्द्रिया निरन्तर विषयो की तरफ दौड़ रही है । ऐसी हालत में मुझे मेरे से भी ज्यादा तुम पर तरस आती है । तुम क्या कर रहे हो ? मैं तो एक कान के वश में हुआ उसका इतना दारुण विपाक भोग रहा हूँ । और तुम पाँचो इन्द्रियों के वश में होकर चल रहे हो । तुम्हारे विपाक की कल्पना करने पर तो रोगटे खड़े हो उठते हैं । जरा सोचो-अपने लिए । अधिकांश इन्सानो की दृष्टि दूसरो को देखने की अधिक रही है । अपनी तरफ तो उसकी दृष्टि ही नहीं जाती ।



सुख के लिए मानव आग से खेल रहा है,
 विष मुझे बाणो को भी दृढ़ता से भेल रहा है ।
 इतने पर भी सुखी नहीं बन पाया वह, क्योंकि,
 जीवन रथ को सदा उत्पथ में ही ठेल रहा है ॥

(५५)

मूर्खता किसकी ?

पक्षियों में तोता एक ऐसा पक्षी है कि वह मानव जैसी भाषा बोल सकता है । पक्षी को मानव जैसी भाषा बोलते देख कर आदमी ने सोचा क्यों न इसे पाल-पोषकर बड़ा किया जाय और इसे मानव की भाषा सीखा दी जाय । चस फिर क्या था । आदमी ने तोते को मानव की भाषा सिखाना प्रारम्भ किया ।

बोलो मीठू राम-राम सा. तो तोता बोला राम-राम सा.
बोलो मीठू दो एका दो दो--दो दूनी चार
तोता बोलता है—दो एका दो--दो दूनी चार ।

आदमी ने सोचा वाह, अब तो बहुत होशियार हो गया है तोता । अब इसे पिंजरे में रखने की क्या आवश्यकता है । क्यों न इसे समझा देना चाहिए कि बिल्ली कुत्ता कोई भी आ जावे तो उड़ जाना ताकि उसे खा न सके । यह सोचकर आदमी ने तोते को रटाया ! बोलो मीठू कुत्ता बिल्ली आवे तो उड़ जाना ।

मीठू बोला—कुत्ता बिल्ली आवे तो उड़ जाना ।
कुत्ता बिल्ली आवे तो उड़ जाना ।

आदमी खुश हो गया । वाह अब तो तोता समझ गया है अब कुत्ते बिल्ली इसे मार नहीं सकते । यही सोचकर तोते को आदमी ने तोते को पिंजरे से बाहर निकाल दिया । तोता केवल रटना ही जानता था । उसे समझ नहीं थी जैसे मालिक ने समझाया वैसा उसने रट तो लिया पर समझा नहीं कि कुत्ते बिल्ली क्या होते हैं । इस ना समझी के कारण बिल्ली ने तोते को आ दबोचा और वह उड़ नहीं सका । ची ची करता रह गया । यह देखकर उसका मालिक दौड़ा-दौड़ा आया और चिल्लाया—अरे नादान ! तुम्हें इतना समझाया था । फिर भी तुम बिल्ली से नहीं बच सके । आखिर तो पक्षी ही हो । मानव की भाषा जरूर सीख गये पर दिमाग नहीं आया तुम्हारे में मूर्ख ही रह गए ।

इन्सान को गुस्सा करते देखकर तोता बोला--समझ-दार इन्सान ! यह सही है कि मेरे में दिमाग नहीं है, पर तुम्हारे में तो दिमाग है ना । तुम्हें ऋषि महर्षि त्यागी महात्मा प्रतिदिन समझाते हैं कि इन सासारिक वस्तुओं में सुख नहीं है, सुखाभास है । और उनके सामने हाँ भी भरते हो कि आपकी बात सत्य है । पर आज भी वही कार्य कर रहे हैं । जो पहले करते थे । बोलो—मूर्ख तुम हो या मैं हूँ ?



(५६)

चिड़िया का सन्देश

एक नन्ही सी चिड़िया वृक्ष मूल के खोखर के किनां अपने रहने के लिए जाल बनाने का प्रयास करने लगी बड़ी मुश्किल से तिनका लाकर वह वहां लगाती और तिनका गिर पड़ता । वह फिर से नीचे जाती तिनका लेकर आती और फिर वहां आकर लगाती । और वह फिर पड़त ऐसा एक बार-दो बार नहीं अनेक बार हो गया । फिर भी चिड़िया ने पुरुषार्थ नहीं छोड़ा वह तिनका बार-बार लाकर वहां लगाने का प्रयास करती रही ।

मकड़ी के परिश्रम को इस प्रकार निरर्थक जाते देखा कर आदमी ने कहा—अरे बेजान चिड़िया ! क्यों बार-बार तिनका उठा रही है । तेरे मे तिनका लगता तो है नहीं । तेरा परिश्रम बेकार जा रहा है ।

आदमी की इस बात को सुनकर के भी चिड़िया ने अपना परिश्रम करना नहीं छोड़ा । वह उसी लग्न निष्ठा के साथ परिश्रम करती रही । आखिर उसके परिश्रम ने चमत्कार कर दिखाया । तिनका उस खोखार मे जा टिका ।

फिर क्या था चिड़िया एक के बाद एक तिनका लगाती चली गई। और अपने लिये एक घोंसला तैयार कर ही लिया।

धूमता-धामता आदमी फिर से उसी वृक्ष की छाव में आकर बैठ गया। सृष्टि के श्रेष्ठ प्राणी आदमी आया देखकर चिड़िया ने उसे सूचित किया तुमने तो कहा था न कि मैं बेकार परिश्रम कर रही हूँ। पर लो देखो—मैंने अपना घोंसला तैयार कर लिया है। और आराम में रह रही हूँ। और एक तुम हो जो समझदार कहलाते हो। सब कुछ करने में समर्थ कहते हुये भी भूखे मर रहे हो। खाने के लिए भोजन की पूरी सामग्री ही नहीं जुटा पा रहे हो।

चिड़िया के इस सदेश ने आदमी का मुह वद कर दिया।



दुर्गम पथ पर चलने का अभ्यासी बन गया
है आदमी,
विकट विपत्तियों को सहने का अभ्यासी बन गया
है आदमी।
पर मानव शक्ति विपरीतगामी अधिक बनी है,
सघर्षों से जूझने का अभ्यासी बन गया है आदमी ॥

(५७)

“गिलहरी का अथक परिश्रम”

सृष्टि का एक प्राणी इन्सान अथक परिश्रम करके भी जिन्दगी में सफल नहीं हो सका । विवाह किया सुख पाने के लिए तो पत्नी कर्कशा मिल गई । व्यापार किया घन दाने के लिये तो प्रॉफिट के स्थान लॉस हो गया । जो भी काम किया उसमें हानि ही हानि होती चली गई । आखिर इन्सान अपनी जिन्दगी में ऊब गया । वह जहां भी चला जाता उसे दुख ही दुःख प्राप्त होता । ऐसे जिन्दगी जीने के वजाय तो मरना अच्छा । यही सोच कर वह निकल पड़ा, अपने घर से जंगल की ओर । चलता ही गया चलता ही गया । बहुत दूर निकल आया । घने जंगल को पार करने के बाद उसे एक झरना दिखलाई दिया । थका मदा इन्सान उस झरने के पास जा पहुंचा । प्यास तो तेजी से लग रही थी । इसलिये सबसे पहले उसने झरने का शीतल मुमधुर जल पीकर अपनी प्यास शान्त की । उसके बाद शीतल-वृक्ष छांव में बैठ गया और प्राकृतिक सौन्दर्य का अवलोकन करने लगा ।

इसी अवलोकन में उसने एक विचित्र बात देखी । वह

यह थी कि एक नन्ही-सी गिलहरी जो भरने के पास जाती और अपनी पूंछ गीली करके स्थल-भू भाग में आकर उसे सूखों देती। फिर भरने के पास जाती और गिली पूंछ करके स्थल भू भाग में आकर फिर मुखा देती। उसका यह क्रम निरन्तर चल रहा था गिलहरी की यह स्थिति देखकर उस आदमी से रहा नहीं गया। वह बोला ए' नन्ही-सी टुवली जान ! यह क्या कर रही हो। क्यों बार-बार भरने में जाकर पूंछ गीली करके मुखा रही हो। क्या कारण है, इस प्रकार करने का ?

आदमी की आवाज सुनकर गिलहरी के पाव ठिठक गए और उसने आदमी को घूरा और बोली—इन्सान ! तुम्हें क्या मतलब मैं क्या कर रही हूँ। तुम अपना काम करो। मेरे काम में हस्तक्षेप करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

गिलहरी की आवाज सुनकर इन्सान ने कहा—अरी मैं तुम्हारे कहा बाधा डाल रहा हूँ ? मैं तो केवल यह पूंछ रहा हूँ कि तुम यहाँ क्या कर रही हो ?

गिलहरी—क्या तुमको दिख नहीं रहा है। मैं भरने का पानी अपनी पूंछ में बार-बार लेकर बाहर ला रही। यह भरना सुखाना है। इसका सारा पानी खाली करना है !

नन्ही-सी चुहिया के पहाड़ खोदने की तरह गिलहरी को निरर्थक परिश्रम करते देखकर मानव ने अट्टहास करते हुए कहा—वाह घन्य है तुम्हारा परिश्रम।

तुम तो क्या तुम्हारी सात पीढिया भी इसी तरह करती-र खप जाए तो भी यह भरना सूख नहीं सकता।

गिलहरी—नादान इन्सान ! तुम मेरी तरफ क्यों देखते

हो । मैं तो अपना लक्ष्य पुरुषार्थ बनाया है । फल की तरफ कभी ध्यान ही नहीं दिया । इसलिये मैं तो अपना परिश्रम करती रहूंगी । भले भरना सूखे या न सूखे । इससे मुझे कोई मतलब नहीं है ।

गिलहरी की इस अदम्य साहस भरी बात ने इन्सान को अपने विषय में सोचने के लिये विवश कर दिया । कहां तो यह गिलहरी जिसके सामने पहाड़ जितना काम पड़ा है तो भी नहीं घबरा रही है' और कहां मैं जो थोड़े से परिश्रम में सफलता न पाकर मैदान छोड़कर भाग खड़ा हुआ हूँ । क्या मैं गिलहरी से भी गया गुजरा हूँ । नहीं-२ मुझ ऐसा नहीं करना चाहिये । मैं भी गिलहरी की तरह अदम्य साहस एवं उत्साह के साथ काम करूंगा तो एक न एक दिन सफलता पाकर रहूंगा ।

थके हारे उस इन्सान ने नन्ही-सी गिलहरी से प्रेरणा लेकर अपने विचार बदल दिये और उत्साह एवं लगन के साथ अपने कार्य में जुट गया ।

नन्ही-सी गिलहरी ने डूब रहे इन्सान को बचा लिया ।

(३)

आज जवाहर जैसा लोकप्रिय नेता कहा रहा है ।

आज गांधी जैसा पर दुःख चैता कहां रहा है ?
वर्तमान की विभिषिका का बड़ा विचित्र रूप है,

आज भामाणाह जैसा दानदेता कहां रहा है ।



(५८)

मूषक का स्वार्थ

इधर से उधर फूदकते हुए मूषक--चूहे को एक दिन धान्य का अक्षय भण्डार दिखाई दे गया। एक कोठे में गेहूँ ही गेहूँ भरे हुए थे। जिसे देखकर मूषक बहुत खुश हुआ। और सोचने लगा 'वाह' यह अनाज मेरे हाथ लग जाय तो जिन्दगी भर खाऊँ तो भी समाप्त होने वाला नहीं है। पर इस कोठे में जाया कैसे जाय ? इसका--मुख्य द्वार तो बंद है मूषक न कोठे के चारों ओर दौड़ नगाई और वह उसका सूक्ष्मता से निरीक्षण करने लगा कि कहां छिद्र है ? देखते-देखते आखिर उसे एक सुराख--छिद्र मिल ही गया। हालाँकि वह था तो बहुत छोटा ही पर लोभ के वश होकर नादान मूषक अपने शरीर को सिकोड़ कर उस सुराख से भीतर प्रविष्ट हो ही गया।

अब क्या था ? उसकी आखों के सामने धान्य का अखूट भंडार था। जिसे पाकर मूषक सोचने लगा। जितना अनाज मेरे पास है, उतना मेरे किसी भी साथी के पास नहीं होगा दुनिया में मेरे से ज्यादा धनवान कौन होगा ? अब तो मेरी जिन्दगी बहुत शान्ति से गुजरेगी। भोजन के लिये इधर-उधर भटकना नहीं पड़ेगा। बिल्ली का भी डर

प्रकृति भी मुखर हो उठी]

[८६]

नहीं है । क्योंकि वह भीतर प्रवेश ही नहीं कर सकती ।
 यहां तो बस मेरा ही एकाधिकार राज्य है । कुछ समय तक
 तो चूहा मन की कल्पनाओं में ही उड़ता रहा । इसके बाद
 अनाज खाने लगा जब भी भूख लगती पेट भर खाता ।
 दो चार दिन तक तो उसे बड़ी प्रसन्नता की अनुभूति हुई ।
 पर आखिर पूरे कोटे में अकेला होने से कब तक उसका
 मन लगता । अब उने अपने भाई दूसरे चूहों की याद आने
 लगी । सोचा जाऊं वहा पर और उन्हें भी बताऊं कि मेरे
 पास कितना दड़ा अनाज का भण्डार है । दिन भर अकेले-र
 तो दिन कट ही नहीं पा रहा है । यह सोच कर मूषक-राज
 अपनी शेखी बघारने, कोठे से वार निकलने के लिए उस
 सुराख के पास पहुंचे । सुराख तो पहले से ही छोटा था ।
 तब भी जैसे-तैसे मूषक राज ने भीतर प्रवेश किया था ।
 और अब तो पेट भर अनाज खाने से मूषकराज का शरीर
 भी फूल गया था । अतः सुराख बहुत ही छोटा पड़ने लगा ।
 मूषक-राज से निकलना नहीं हो पा रहा था । यह देख कर
 तो मूषकराज बहुत घबराये । अब तो कैसे भी वहां से निक-
 लने की कोशिश करने लगे । उन्हें अकेलापन बहुत अखरने
 लगा । पर कोशिश करने पर भी निकल नहीं पा रहे थे ।
 आखिर मूषकराज ने भटके के साथ निकलने की पूरी-कोशिश
 की तो उस छिद्र में ही फंस गए । विचित्र दगा बन गई
 उनकी न बाहर जा पाए और न भीतर ही । मूषकराज
 तड़फने लगे । पर अब उन्हें बचाने वाला कौन था ? आखिर
 प्रलोभन में आकर मूषकराज ने वहीं तड़फ-र कर अपने
 प्राण छोड़ दिये ।

कुछ दिनों के बाद इन्सान ने आकर जब कोठा खोला

तो उसमें वदबू आने लगी । समझ गया इन्सान कि कोई न कोई चूहा मर गया लगता है । और जब देखा कि इस छिद्र में फंसा हुआ है तो वह बोल पड़ा— आखिर तो मूर्ख ही ठहरा । खा-पीकर मुस्टंड तो हो गया और अब जब भगने लगा तो इसमें फंस गया ।

चूहे के लिए इस प्रकार के शब्द सुनकर प्रकृति भी मुखर हो उठी । ए सृष्टि के श्रेष्ठ प्राणी यह तो ठीक है कि चूहा मूर्ख है ! पर तुम यह क्या कर रहे हो । तुम भी अपने ही स्वार्थ के वश होकर धन से, चन्द चांदी के टुकड़ों से भण्डार को भरने में लगे हुए हो । क्या तुम्हें मालूम नहीं कि तुम भी इसी प्रकार उसमें अपने प्राण गंवा बैठोगे । चूहा तो नादान था पर तुम तो समझदार हो ना !



(५६)

कुत्ते की आदत

कुत्ते अपने स्वामी के प्रति बहुत वफादार होते हैं । चोरों से अपने स्वामी की रक्षा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । कुत्ता, आदमी के साथ या फिर अन्य किसी के साथ बड़े स्नेह से रह सकता है पर अपने जातीय भाई अपरिचित कुत्ते के साथ नहीं । एक बार एक गली का कुत्ता, भटकता हुआ दूसरी गली में चला गया । उस गली के कुत्तों ने जब उसे देखा तो स्वागत करने की वजाय, सब भौंकने लगे । सर्भा कुत्तों ने आकर उसे चारों तरफ से घेर लिया और भौ-भौ करके उसे कचोटने लगे । विचारा अकेला कुत्ता, उन सबके सामने कहां तक टिकता, आखिर अपनी जान बचाने के लिये वहां से भाग निकला और घूमता-घामता अपनी गली में पहुंच गया । एक दिन उसकी गली में उसी गली का एक कुत्ता आ गया तो इन सब कुत्तों ने भी भौ-भौ करके उसे अपनी गली से खदेड़ दिया ।

कुत्तों की इस आदत को देखकर राह चलते हुए एक पंडित ने कहा—आखिर श्वान-कुत्ते ही तो ठहरे । कुत्ता, कुत्ते को देखकर घूरता ही है । कभी भी एक कुत्ता, अपने 'ग्रुप' के अलावा अन्य कुत्ते को देखना भी पसन्द नहीं करता और यदि कोई कुत्ता भूल-चूककर आ भी जाय तो जब तक

उसे वहा से वह नही निकाल देता है, तब तक शान्ति से नही बैठता है ।

कुत्तों ने पोथी के पण्डित से जब सपने लिए प्रतिक्रिया सुनी तो बोला—पंडितराज ! बात तो आपकी सच्ची है । हमारे मे यह दुर्गुण निश्चित रूप से है । हम अपने ही भाई को देखना पसन्द नही करते । वंसे भी हम नासमझ है, पर आप तो दुनिया के श्रेष्ठ प्राणी हो और उसमे भी पंडित हो । आपने तो बहुत पढाई की है । हमको तो पढ़ना भी नही आता है, पर हमने देखा है कि आप भी जब किसी दूसरे पंडित को देखते हो तो हमारी तरह ही घुराते है । हम तो हमारे सामने कुत्ता आने पर ही घुराते है । सामने न हो तो हम उसके विषय मे दूसरो के सामने कुछ नहीं कहते हैं । पर आप तो आपके सामने दूसरा पंडित आए या न आए, उसके परोक्ष मे भी उस पंडित की बात चलेगी तो घूर-घुराए बिना नही रहोगे, और आपकी घूर्राहट भी बहुत तेज होती है ।

अब बोलिये पंडितराज ! जब आपकी भी यही स्थिति है तो फिर हमारे मे और आप मे अन्तर ही क्या रहा है? पहले आप अपन दुर्गुण को निकालिये फिर हमको कुछ शिक्षा दे तो उपयोगी रहेगा । अन्यथा आपकी शिक्षा का हम पर कोई असर नही होने वाला है ।

कुत्ते की इस आवाज को सुनकर पंडितजी का मस्तक शर्म से नीचे झुक गया । चले थे अपनी पंडिताई बघारने के लिये पर अब मुंह बिगाड कर वहां से चल पड़े ।

इसीलिये नीतिकार ने सही कहा है—पण्डितो पण्डित
दृष्ट्वा श्वानवत् घुरघुरायते ।

❀

प्रकृति भी मुखर हो उठी]

[६३

“चोर और तिजोरी”

एक कुत्ते को कहीं से एक रोटी प्राप्त हो गई। अभी उसे भूख नहीं थी इसलिए उसने सोचा—यह रोटी कहीं गाढ दी जाय। जब भूख लगेगी तब निकालकर खा लूंगा। कुत्ता उस रोटी को गाढने चल पड़ा, पर रास्ते में पानी का नाला आ गया, उसे पार करना था। अतः वह पानी में ही चलने लगा। पानी में चलते-चलते उसकी दृष्टि नीचे की ओर पड़ी तो उसने देखा कि उसकी तरह ही एक और कुत्ता भी रोटी लेकर भाग रहा है। यह देखकर वह सोचने लगा—क्यों न इस कुत्ते की रोटी भी छीन ली जाय, ताकि मेरे पास दो रोटियां हो जाएगी। यह सोचकर नासमझ कुत्ते ने अपनं साथ चल रहे कुत्ते से रोटी छीनने के लिए मुंह खोला और भौकना चालू किया।

कुत्ते ने मुंह खोला और रोटी इसके मुंह से निकलकर नाले में जा पड़ी। अब उसके साथ रहे कुत्ते के मुंह में भी रोटी नहीं रही। वस, वह भौकने लगा तो वह कुत्ता भी भौकने लगा तब उसे बड़ी निराशा हुई कि उसके हाथ में आई रोटी भी चली गई। वह निराश और उदास हो नाले से बाहर निकला।

इधर समझदार इन्सान, नाले के किनारे ही खड़ा-खड़ा कुत्ते की सब हरकत देख रहा था। ज्यों ही कुत्ता पास में आया तो इन्सान बोला—वाह रे नासमझ कुत्ते।

तुम्हें यह भी मालूम नहीं कि जो कुत्ता तुम्हारे साथ में चल रहा था, वह वास्तव में कुत्ता नहीं था, किन्तु तुम्हारी ही परछाई थी, जिसे तूने कुत्ता समझकर उसकी रोटी छीनने की कोशिश की तो अपनी रोटी भी गंवा बैठा । अपने भाई की रोटी जो छीनेगा, उसका यही हाल होगा । इसीलिए मानवों में भी जो नासमझी का काम करता है, उसे कुत्ते की उपमा दी जाती है ।

इन्सान की बात सुनकर गुस्से में आया कुत्ता भौंकने लगा । अरे समझदार कहलाने वाले इन्सान ! तुम मुझे बदनाम कर रहे हो, पर जरा अपने गिरेवान में भी झाँककर देखो—तुम्हारा क्या हाल है ? चंद चांदी के टुकड़ों को लेकर क्या तुम नहीं भाग रहे हो ? अपने ही भाई का धन छीनने के लिए तुम सब कुछ करने के लिए तैयार हो जाते हो । अपनी सारी जिन्दगी को धन बटोरने में ही बर्बाद कर रहे हो । एक दिन वह समय आ जाता है, जब इसी भाग दौड़ में तुम्हारी आयु समाप्त हो जाती है । और तुम सब कुछ छोड़कर यहाँ से चले जाते हो । अपने स्वार्थ के पीछे भाई के साथ जितनी गद्दारी तुम कर सकते हो उतनी मैं तो क्या दुनियाँ का कोई भी प्राणी नहीं करता ।

सच कहूँ तो तुम्हारे स्वार्थ की परछाई मेरे ऊपर गिर जाने से ही मैं स्वार्थी बन गया हूँ । संभव है अगर तुम्हारा साथ नहीं होता तो मेरा यह स्वभाव नहीं होता । इसी आवाज के साथ कुत्ता बहुत तेजी से भौंकता हुआ आदमी की ओर लपका । यह देखकर आदमी ने देखा कहीं यह मुझे काट न ले यह सोच वहाँ से भाग खड़ा हुआ ।



हवा और बादल का संघर्ष

आषाढ का मौसम, गर्मी भयंकर गिर रही थी। सभी की दृष्टि आकाश की ओर लगी हुई थी। प्यासा चातक पानी के लिये तरस रहा था, किसान बीज बोने के लिए वर्षा का बेताबी से इन्तजार कर रहा था। आखिर सभी की आशाओं को पूर्ण करने के लिए नभ में काले कजराले बादल मंडरा गए।

बादलों का नभ में एक छत्र राज्य देखकर हवा से रहा नहीं गया, उसने सोचा--इन्हे कैसे भूमिसात् किया जाय? ऐसे तो ये वनीभूत है, अतः शक्ति संपन्न है, ऐसी स्थिति में इन्हे नीचे नहीं गिराया जा सकता है? फिर क्या किया जाय?

हवा ने सोचा—सृष्टि के सभी प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ बुद्धिमान तो आदमी है, क्यों न आदमी से ही पूछा जाय कि बादल को आकाश से कैसे नीचे गिराया जाय? यही सोचकर हवा आदमी के पास पहुँची और अपनी समस्या सामने रखकर उसने समाधान माँगा।

आदमी की स्वार्थ बुद्धि ने बादल को गिराने की तरकीब निकाल ही ली । उसने हवा को समझाया - देखो, बादल जब तक धनीभूत रहेगा तब तक तो इसे गिराया नहीं जा सकता है, हा यदि इसकी शक्ति विखंडित कर दी जाय तो इसे नीचे गिराया जा सकता है । इसके लिए तुम्हें यह काम करना है कि तुम बहुत तेजी से चलो । जितनी तेजी से चलोगी उतनी ही बादल की शक्ति शिथिल होती चली जाएगी और वह बिखर जाएगा, बिखरने पर वह आकाश में टिक नहीं सकता । हवा ने मानव की बात सुनकर वैसे ही किया । हवा के थपेड़ों से बादल बिखर गए और कुछ ही क्षणों में धरती पर आ गए ।

आदमी की स्वार्थ बुद्धि दूसरे को ऊपर उठने नहीं देना चाहती ।



बिना आवरण के आकर्षण नहीं होता,
बिना सुशासक के संचालन नहीं होता ।
कर्म की विचित्रता को समझो उपासको,
बिना कर्मों के जन्म-मरण नहीं होता ॥



आम्र भी कभी-कभी मारक बन जाता है,
किपाक भी कभी-कभी तारक बन जाता है ।
शत्रु मित्र की परिधियों को समझो भाइयों,
मित्र भी कभी-कभी संहारक बन जाता है ॥

(६२)

चन्दन वृक्ष और सर्प

चन्दन की भीनी-भीनी महक से पूरा उपवन महक उठा । पशु-पक्षी भी पुलकित हो उठे । सर्प तो उस सुगन्ध से इतना अधिक मोहित हुआ कि वह सब कुछ छोड़कर चन्दन के तने में आकर लिपट गया और चन्दन की शीतलता एवं सुगन्ध में आसक्त बन गया । सर्प को अपने तने में लिपटते देखकर चन्दन वृक्ष को एक बार तो विचार आया—अरे यह जहरीला जन्तु ! मेरे क्यों लिपट गया ? इसकी तो जहरीली निश्वास भी घातक है और यदि जहर उगल दे तो विनाश निश्चित ही है ।

एक बारगी तो चन्दन तो चिन्तित हो गया पर दूसरे ही क्षण सोचा—ठीक है, सर्प जहरीला है तो रहने दो । पर मैं इसका जहर अपने में ग्रहण नहीं करूंगा तो मुझे कोई हानि नहीं हो सकती । यह मेरे तने से लिपट रहा है, लिपटने दो । भले बाहर से यह मेरे चिपका हुआ दृष्टि-गोचर हो पर भीतर से मेरी और इसकी दूरी सदा बनी रहेगी । चन्दन के वृक्ष ने यही किया, कभी भी उसके जहर को अपने भीतर प्रविष्ट नहीं होने दिया । एक बार आदमी

धूमता-धामता उसी उपवन आ पहुँचा । चन्दन की भीनी-भीनी सुगन्ध से आकर्षित हो वह सीधा चन्दन वृक्ष के पास पहुँच गया पर सर्प को चन्दन के वृक्ष से लिपटा देखकर ठिठक गया । और फिर सर्प को हटाने की योजना बनाने लगा ।

आदमी को आया देखकर सर्प ने चन्दन वृक्ष से कहा—
अरे ! मानव आया है मानव ! पर यह क्या ' यह ठिठक क्यों गया ? इसे तो आगे आना चाहिये था । क्या यह तुमसे डरता है ?

तब चन्दन वृक्ष बोला—'नहीं-नहीं' । वह मुझसे नहीं तुम से डरता है । तुम जो मेरे से लिपटे हो, इसी से वह ठिठक गया है और तुम्हें हटाने की योजना बना रहा है ।

सर्प बोला—पर वह मेरे से क्यों डरता है ? मैं भी तो तुम्हारे साथ हूँ ।

चन्दन वृक्ष बोला—तुम भले बाहर से मेरे साथ हो पर भीतर से मेरे से अलग हो । तुम में जहर भरा है, जब तक तुम्हारे अन्तरग की जहरीली ग्रन्थि नहीं निकलेगी, तब तक तुम से लोग दूर ही रहेंगे ।

इधर आदमी ने सर्प को हटाने के लिए पुंगी की सुरीली आवाज छोड़ ही दी । पूरा उपवन सुरीली आवाज से झनझना उठा । इतनी देर तक तो सर्प चन्दन वृक्ष से बात कर रहा था, पर ज्यों ही उसके कान में पुंगी की आवाज पड़ी, त्यों ही वह अपना भान भूल गया और चन्दन

वृक्ष को छोड़कर पुगी के सामने नाचने लगा । बुद्धिमान इन्सान ने भान भूले सर्प का दमन कर ही दिया और चंदन वृक्ष को भी अपने काम में ले लिया ।

जो व्यक्ति सज्जन पुरुष के साथ रहकर भी अपने अन्तरंग से दुर्जनता नहीं छोड़ता है, वह भले बाह्य परिवेश में सुन्दर कितना भी क्यों न नजर आए उसे कोई नहीं चाहता ।

जो अपना भान भूल जाता है, स्व को छोड़कर पर नें रमण करता है, उसका हाल सर्प की तरह ही होता है ।



दीपक सहायक है, तमिस्र निशा में,
मित्र सहायक है, विपन्न दशा मे ।
अभीष्ट सिद्धि के लिए साधको,
जान सहायक है, आत्म दिशा मे ॥



एलेक्शन सौरमण्डल का

घरती पर (एलेक्शन) मतदान को देखकर एक बार आकाश-मण्डल में रहने वाले गृह, नक्षत्र और तारा सभी सोचने लगे—अपने यहां भी एलेक्शन होना चाहिए। हमें भी स्वतन्त्र रूप से वोट देने का अधिकार मिलना चाहिए। आखिर सौरमण्डल में इस बात की सरगर्मी से चर्चा होने लगी। इतने दिनों तक तो सूर्य, अपनी मनमानी करता था। वस, सर्वत्र अपनी ही धाक जमाने में तुला था। दुनिया में वस उसी की ही प्रतिष्ठा रहे, यही वह चाहता था। अपने अभ्युदय से सबको तेजोहीन बनाए हुए था। अन्य ग्रह-नक्षत्रों को अपने राँव से दबाता रहता था, पर जब सभी ने मिलकर एलेक्शन की बात उठाई तो सूर्य भी विचार में पड़ गया। आखिर विवश होकर उसे एलेक्शन की घोषणा करनी ही पड़ी।

वैसे पार्टियां तो बहुत थी पर उनमें मुख्य दो पार्टियां थी—एक सूर्य की और दूसरी चन्द्रमा की। सूर्य का चिन्ह था हाथ और चन्द्रमा का निशान था चर्खा कातती बुडिया। वस, दोनों ही पार्टियां अपना-अपना प्रचार करने लगीं। सूर्य और चन्द्रमा दोनों ही छोटे मोटे ग्रह-नक्षत्र-तारा सभी

के पास पहुंचने लगे । सूर्य, जिस किसी के पास पहुंचता उन्हें अपने रौब से ही कहता—तुम्हे वोट मुझे देना है, यदि तुमने वोट मुझे नहीं दिया तो जानते हो मेरे में कितनी शक्ति है ? तुम्हारी नींद हराम कर दूंगा । शान्ति से जीना दुःस्वार कर दूंगा । जला-जलाकर राख कर दूंगा । तुम्हारा भला इसी में है कि तुम मुझे ही वोट दो ।

चन्द्रमा भी अपना प्रचार-प्रसार करने के लिये सभी के पास पहुंचने लगा । पर उसके प्रचार का तरीका सूर्य से ठीक विपरीत था । सूर्य में प्रचण्डता थी, अपना दबाव था तो चन्द्रमा में शीतलता थी और सरलता थी । चन्द्रमा सभी से हाथ जोड़कर सौम्य-व्यवहार करते हुए कहता—भाईयों ! अपने सौरमण्डल की सुव्यवस्था की जिम्मेदारी आप सभी पर है । अब आपको निर्णय लेने का अधिकार दिया गया है कि--सौरमण्डल की व्यवस्था कैसे जमाई जाय? एलेक्शन भी इसीलिए हो रहा है । मुझे इलेक्शन में खड़े होने के लिए आप लोगो ने ही प्रोत्साहित किया है । अतः मुझे वोट देकर विजयी बनाने में मेरी नहीं आप सबकी विजय होगी । मैं आप सबको चमकने का अवसर दूंगा । आपकी चमक मेरी चमक होगी । अब आपको क्या करना है, यह आप पर निर्भर है ।

चन्द्रमा के इस अपनत्व पूर्ण व्यवहार ने सौर-मण्डल के सदस्यों का मन जीत लिया । सभी ने मन ही मन निर्णय लिया वोट तो चन्द्रमा को ही देगे ।

एलेक्शन का दिवस आ गया । सभी ने वोट दिए । मतगणना हुई तो जात हुआ कि ८० प्रतिशत वोट चन्द्रमा

के पक्ष में थी । केवल २० प्रतिशत वोट सूर्य के पक्ष में थे । चन्द्रमा के विजयी होने से सौर-मण्डल की सरकार चन्द्रमा की बनी ।

सूर्य झुझला गया । अपमान का घूंट पीकर वहाँ से निकला और आकाश में प्रचण्डता के साथ तपने लगा । सूर्य के क्रोध और अभिमान को देखकर बीस प्रतिशत सदस्य भी उसे छोड़कर चन्द्रमा के पास चले गये । दल बदल कर लिया । अब पूरे सौर-मण्डल पर चन्द्रमा का आधिपत्य हो गया, विचारा, सूर्य सुबह से शाम तक आकाश मण्डल का अकेला चक्कर लगाता है, उसके साथ कोई भी दृष्टिगत नहीं होता । आदमी भी उसके प्रकाश का उपयोग जरूर करता है, पर उसे वह भी देखना नहीं चाहता, क्योंकि सूर्य में अभिमान इतना है जिसने आदमी डरता है कहीं ये मेरी आँखें न फोड़ दे ।

सच है जो अपने ही राँव में रहता है उसका यही हाल होता है ।

सूर्य के छीपते ही चन्द्रमा अपने दल-बदल के साथ आकाश-मण्डल में आता है । खुद भी चमकता है और दूसरों को भी चमकाने का पूरा-पूरा अवसर देता है । आदमी भी उसकी सुषमा देखकर बड़ा प्रसन्न होता है बार-बार उसे देखने की इच्छा रखता है, उससे उसे गीतलता मिलती है ।

जो स्वयं भी जीता है, और दूसरों को भी जीने का अवसर देता है, वही सच्चा नेता बनता है ।



(६४)

गधे की पुकार

एक वार जंगल मे पशुओं का सम्मेलन हो रहा था । गाय-भैस, ऊंट-वैल, गधे-घोड़े, गेर-बकरी सभी प्रकार के पशु एकत्रित हुए थे । और सभी अपनी-अपनी राम कहानी सुना रहे थे । इसी बीच गधे ने अपनी वेदना व्यक्त करते हुए कहा—भाइयों ! मेरे मन मे बहुत समय से एक दुःख उभर रहा है जिसके कारण मेरा खाना-पीना हराम हो रहा है । मैंने अपने दुःख को दूर करने की बहुत कोशिश की लेकिन वह दूर नहीं हुआ तो मैंने सोचा—मैं अपनी बात आप सबके सामने रख दूँ, जिससे आप मेरा दुःख दूर कर सकें । गधे की बात सुनकर सभी एक साथ बोले—गधे भाई ! जरूर कहो, जरूर कहो । हम तुम्हारे दुःख को दूर करने की पूरी-पूरी कोशिश करेंगे ।

अपने भाईयो की हमदर्दी पर गधा संतुष्ट हुआ और अपनी अन्तर्वेदना बतलाने लगा—भाइयों ! सृष्टि का बुद्धिमान प्राणी मानव गधे को सुख और अज्ञानी क्यो समझता है ? जब भी कोई व्यक्ति नासमझी का काम करके आता है तो वह उसे गधा कहता है । गधा है गधा, इसमे बिल्कुल

भी अक्कल नहीं है । आदमी ने पूरे मानव जगत् में मुझे बदनाम कर रखा है, आखिर मुझ में क्या अज्ञान है, जिससे मुझे बुद्धिहीन माना जाता है, जबकि मानव के कार्यों में मैं बहुत सहयोग देता हूँ ।

गधे की बात सुनकर सभी पशुओं ने कहा—वाह भाई ! बात तो तुम्हारी सच है । तुम में मूर्खता का कोई लक्षण दिखलाई नहीं देता । बहुत सीधे और भोले प्राणी हो । फिर आदमी तुम्हें गधा क्यों कहता है ? बुद्धिहीन क्यों समझता है ? कुछ समझ में नहीं आया । सभी पशुओं ने बहुत विचार किया पर जब वे इस बात का निर्णय न कर सके तो सोचा इस विषय में मानव से ही पूछना चाहिये । वही बता सकता है कि बुद्धिहीन व्यक्ति को गधा कहकर क्यों पुकारता है ?

डहर एक आदमी उर्सा रास्ते से जा रहा था । उसे देखकर घोड़ा हिनहिनाया—अरे ! आदमी जा रहा है । पूछो उसे कि हमारे भाई को गधा क्यों कहते हो ? पर वह तो हमारी भाषा समझता नहीं है । बड़ी समस्या है ।

इतने में होगियार कौआ बोला—अरे ! तोता, मानव को उसकी भाषा में बोलकर समझा देगा । सभी ने कहा—हा-हा ठीक है । तब तोते ने पशु सम्मेलन में खड़ी हुई समस्या को मानव के सामने रखा और उससे पूछा कि तुम मूर्ख को गधा क्यों कहते हो ?

मानव ने कहा—हम मूर्ख को गधा इसलिए कहते हैं कि गधे में कोई अक्कल नहीं होती । इतने में गधा बीच में ही ढेच्यूं-ढेच्यूं करने लगा—कहने लगा कि यह कैसे ?

प्रकृति भी मुखर हो उठी]

[१०५]

तब मानव बोला—गधा ज्यादातर कुंभकार के काम में आता है । जब गधा गुम हो जाता है, तब कुंभकार उसे खड्डों में खोजता है क्योंकि गधा घास चरता-चरता चलता जाता है । आगे गड्ढा है उसका भी ध्यान नहीं रखता है और उसमें गिर पड़ता है । जिसे सामने गड्ढे का भी ध्यान न हो, वह गधा ही होता है ।

आदमी का निर्णय सुनकर सारे पशु समझ गए कि वस्तुतः गधे में अक्कल नहीं होती है, वह आगे-पीछे का सोच नहीं पाता है ।



रूप तो सुन्दर है पर कुरूपता से भरा है,
 ज्ञान तो बहुत है पर अहं से भरा है ।
 वर्तमान की इस दुरंगी दुनिया में,
 पोज तो बहुत अच्छा है पर बुराइयों से भरा है ॥



धागों को जोड़ा तो परिधान बन गया,
 ईंटों को जमाया तो मकान बन गया ।
 मानवता के बिखरे कणों को जिसने भी,
 अंतर में संजोया वही सही इंसान-बन गया ॥

(६५)

सृष्टि का विचित्र प्राणी

एक बार कुछ आदमी वन-पथ से निकल रहे थे । उन्होंने चलते-चलते दबूल के भाड़ों के पास ऊंट को खड़े देखा तो एक आदमी ने प्रतिक्रिया की—वाह यह सृष्टि का कैसा विचित्र प्राणी है ? सभी अंगों से टेढ़ा-मेढ़ा और वेडोल है । टांगे भी ऐसी लम्बी-लम्बी हैं कि जैसे कोई खंभे गड़े हो और खाता भी क्या है ? काटे और कुछ पत्ते । बड़ा विचित्र और अभद्र दिखता है यह । इसका पेट देखो तो पूरी कोठी लगता है और गर्दन भी कैसी टेढ़ी-मेढ़ी और लम्बी है ।

आदमी को अपने बारे में कहते हुए देखकर ऊंट ने आवाज की और बोला—अरे बुद्धिमान् इन्सान ! बहुत हो गया बोलते-बोलते । यह सत्य है कि मेरा शरीर टेढ़ा-मेढ़ा और वेडोल है । पर तुम तो बड़े सीधे हो ना । तुमने अपने बाहरी जीवन को भले ही सुन्दर-शालीन बना रखा है पर जरा सोचो तुम्हारे भीतर में कितना टेढ़ापन है ? छोटी-छोटी बातों में तुमक पड़ते हो । अपने स्वार्थ में दूसरे का गला घोटने के लिए तैयार हो जाते हो । तुम्हारे

प्रकृति भी मुखर हो उठी]

[१०७]

व्यवहार को देखा जाय तो तुम पग-पग पर टेढ़े-मेढ़े चल रहे हो । खाते भी तुम बढ़िया-बढ़िया पकवान हो । न मालूम कितने प्रकार का धान्य है ? और कितनी ही प्रकार से बनाते हो ? कितनी ही प्रकार की मिठाईया खाते हो । फिर भी तुम दूसरो को कड़वे ही बोलते हो । और काम किसी के भी नहीं आते हो । मैं भले कांटे खाता हूँ, फिर भी किसी को भी कड़वा वचन नहीं बोलता हूँ और तुम मानवों के कार्यों में पूरा सहयोग देता हूँ ।

बोलो दुनिया का विचित्र और अभद्र प्राणो कौन है— तुम हो या मैं ? बाहरी टेढ़ापन जितना घातक नहीं है उतना भीतरी टेढ़ापन है । ऊंट के मुँह से निकली सच्ची बात का मानव कुछ भी प्रतिकार नहीं कर सका और आगे बढ़ गया ।



मृत्यु को जग में क्रूर कराल कहते हैं,
निर्जीव देह को जग में नर कंकाल कहते हैं ।
शरीर को नहीं आत्मा को समझना होगा,
आत्मा को ही जग में दिव्य मशाल कहते हैं ॥

(६६)

पाषाण की महत्ता

जंगल में एक विशालकाय पाषाण यों ही पड़ा था । अनेक आदमी आ रहे थे, जा रहे थे, पर किसी का भी ध्यान उस ओर नहीं था । अपनी इस कदर घोर उपेक्षा देखकर पाषाण तिलमिला उठा । सोचने लगा—वह छोटा-सा फूल, जिसे सूंघने के लिये आदमी उसके पास पहुंच जाता है । वह छोटा सा सरोवर, पानी पीने के लिये आदमी उस के पास पहुंच जाता है । यह हिलता-डुलता झाड़, जिसकी छाया में भी आदमी पहुंचता है पर मैं इतना बड़ा भीमकाय हूँ तो भी आदमी मेरे पास आने की बात तो दूर रही, मुझ पर दृष्टिपात भी नहीं करता । आखिर ऐसा क्यों ? क्या करूँ मैं कि दुनियाँ के लोग मेरे पास भी दौड़े-दौड़े आने लगे । मुझे भी चाहने लगे । पत्थर ने बहुत सोचा—पर उसकी समझ में कुछ भी नहीं आया । आखिर थककर उसने सोचना बंद कर दिया । पर उसके दिमाग में यह बात बार-बार घूम रही थी—कैसे भी हो, ये लोग मुझे भी चाहे ।

एक बार एक आदमी जो उसी रास्ते से निकल रहा था, उसकी दृष्टि इस विशालकाय पत्थर पर पड़ी तो वह

प्रकृति भी मुखर हो उठी]

[१०६

विचार में पड़ गया । पहुंचा उस पत्थर के पास और उसका सूक्ष्मता से चारों तरफ से निरीक्षण करने लगा । किसी आदमी को अपनी तरफ इस प्रकार निरीक्षण करते देखकर पाषाण ने सोचा—यह आदमी मुझे क्यों देख रहा है ? अब तक जितने भी आदमी आए वे तो बिना देखे ही आगे बढ़ते चले गए और यह तो मुझे बड़े गौर से देख रहा है । कुछ न कुछ खास बात होनी चाहिए । पत्थर मुखर हो उठा—सृष्टि के समझदार इन्सान ! तुम मुझे यो गौर से क्यों देख रहे हो ? क्या मुझ में भी कोई विशेषता है ?

आदमी ने कहा—अरे वाह ! तुम में तो बहुत विशेषता है पर देखने वाला चाहिये । पाषाण—अरे भाई ! तुम ही एक ऐसे व्यक्ति आए हो जो ऐसा बोल रहे हो । बाकी तो तुम्हारे भाई जितने भी आए हैं, वे तो मुझे बिना देखे ही आगे बढ़ गये । आदमी—वे नहीं जानते, तुम्हारी विशेषताओं को । पर मैं जानता हूँ तुम्हारे मे कितनी विशेषता है ?

पत्थर—अगर ऐसा है तो मेरी विशेषताओं को तुम उभार दो, जिससे सभी लोग जानने लग जाए । और मुझे भी लोग चाहने लगे ।

मानव—मैं तो तुम्हारी विशेषताओं को उभार सकता हूँ पर उसके लिए तुम्हें कठिनतम दुःखो को सहन करना होगा । यदि तुमने दुःख सहन कर लिये तो निश्चित ही तुम्हें ऐसा बना दूंगा कि लोग तुम्हें देखने के लिये हजारों मील की दूरी से भी दौड़े-दौड़े आवें । बड़ी-बड़ी पत्रिकाओं में तुम्हारा नाम और फोटो हो ।

पत्थर—वाह-वाह ! अगर इतना तुम कर दो तो मैं

तुम्हारा उपकार कभी नहीं भूलूंगा। इसके लिए मुझे जितना भी कष्ट सहना पड़े, सह लूंगा।

पत्थर की इस दृढ़ता को देखकर उस आदमी ने उसी समय छैनी और हथौड़ा निकाला और उस विशालकाय पत्थर को एक अत्युत्तम मूर्ति का रूप देने के लिये तरासने लगा। जब छैनी से वह मूर्तिकार पत्थर के अतिरिक्त तत्वों को हटाने लगा। पत्थर बार-बार की इन चोटों से कराह उठा और बोला—अरे भाई मुझे तो भयकर वेदना हो रही है। तब मूर्तिकार ने कहा—देखो भाई! मैंने तुम्हें पहले ही कह दिया था कि घोर कष्ट होगा। अगर तुम इसे सहन कर लोगे तो तुम महान् हो जाओगे। अगर इस तरह से घबराओगे तो महान् नहीं बन सकते।

पत्थर ने यह निर्णय ले लिया था कि कुछ भी हो जाय, मुझे महान् बनना है। उसने कहा—अच्छा-अच्छा अब नहीं बोलूंगा। तुम्हें, जो इच्छा हो सो करो। बस, फिर क्या था? मूर्तिकार बड़ी तन्मयता के साथ अपनी कला को पत्थर में उभारने लगा। पत्थर, मूर्तिकार की सारी चोटों को समभाव से सहन करता चला गया। आखिर मूर्तिकार की दक्षता एवं पत्थर के समभाव ने चमत्कार दिखाया और वह पत्थर एक अतीव सुन्दर आकृति में उभर आया। अब तो हजारों लोग उसे देखने के लिये आने लगे। मूर्तिकार के कहे अनुसार पत्र-पत्रिकाओं में उसके फोटो भी छपने लगे। यह सब देखकर पाषाण प्रसन्न हो उठा।

वस्तुतः महान् बनने के लिए दुःख के थपेड़ों को तो सहन करना ही होता है।



(६७)

अपात्र को शिक्षा

आकाश में घटाटोप वादल छा गए । गंभीर गर्जना होने लगी । विजलियां चमकने लगी और कुछ ही देर बाद वर्षा प्रारंभ हो गई । मूसलाधार पानी पड़ने लगा । थल भी जल परिलक्षित होने लगी । सभी मानव अपने-अपने घरों में दुबके हुए थे । जंगल में पक्षी भी अपने-अपने घोंसलो से बैठे प्रकृति का भयावह रूप देख रहे थे । एक वृक्ष पर अनेक पक्षी अपने-अपने घोंसलो में बैठे हुए थे । उसी वृक्ष पर एक बन्दर भी बैठा था । वर्षा बहुत तेज हो रही थी । इसलिए बंदर भीग रहा था । इधर पानी से भीगने के और इधर तेज हवा के चलने से बंदर को ठण्ड लगने लगी उसका सारा शरीर कापने लगा, दांत हिलने लगे । विचारा जैसे-तैसे डाल को पकड़ कर बैठे हुए था ।

बन्दर की यह दयनीय दशा देखकर अपने घोंसले में बच्चों के साथ सुरक्षित रूप से बेठी मैना से रहा नहीं गया और वह बोल उठी—बन्दर भाई ! तुम आये साल इसी तरह बरसात में भीगते रहते हो, सर्दी में ठिठुरते रहते हो कितना अच्छा हो कि तुम मेरी तरह रहने के लिये मकान

का निर्माण कर लो । मेरे तो हाथ-पैर कुछ नहीं हैं-चोंच में तिनके भर-भर कर जैसे-तैसे घोंसला बनाती हूँ पर तुम्हारे तो मनुष्य सरीखी काया है । तुम तो बहुत जल्दी और बहुत मजबूत घोंसला बना सकते हो ताकि इस तरह तुम्हें ठिठुरना न पड़े ।

मैना ने तो बंदर को हित-शिक्षा दी थी, परन्तु बंदर पर शिक्षा का उल्टा ही असर हुआ । आखिर ठहरा तो बंदर ही । वह कब मानने लगा- मैना की शिक्षा को उसे तो तेज गुस्सा आ गया और उसने एक ही झपाटे में मैना के घोंसले को तोड़ डाला और बोला - अरे दुबली जान ! छोटा मुंह बड़ी बात करते हुए तुम्हें गर्म नहीं आती, तुम मुझे शिक्षा देने चली हो । क्या मैं नहीं समझता ? याद रखो । बड़ों के सामने जीभ चलाओगी तो ऐसे ही चोट खाओगी । अभी तो मैंने तुम्हारा घोंसला ही तोड़ा है, आइन्दा मेरे से जुवान लड़ाने की कोशिश की तो तेरी जान निकाल दूंगा ।

बन्दर की इस हैवानियत को देखकर बिचारी मैना अपने किये पर पछताने लगी ।

सच है, कुपात्र को शिक्षा देना निश्चित ही स्वयं के लिये हानिकारक होता है । सर्प को दूध पिलाने से जहर ही बनता है ।



(६८)

दीपक का धुआं काला क्यों ?

दीपक का रंग लाल है, उसका तेल पीले रंग का है, उसकी बाती सफेद है और उसकी लौ भी लाल है, तब उसका धुआं काला क्यों है ? आदमी के दिमाग में दीपक को देखकर यह प्रश्न खड़ा हो गया ।

वह यह विचार कर ही रहा था, इतने में दीपक मुखर हो उठा - ए बुद्धिमान् इन्सान ! क्या तुम्हें मालूम नहीं है कि मैं काला-काला अंधकार खाता हूँ । मेरा भक्षण ही जब काला है तो मेरी जुगाली भी काली ही होगी । काले अंधकार को खाने से मेरा धुआं भी काला ही निकलता है । तुम्हारी भी यही हालत है, भले तुम्हारा बाहर का पोश मेरे समान कितना ही सुन्दर दिखलाई देता हो, पर जैसा कर्म तुम करोगे, फल भी निश्चित रूप से वैसा ही भोगना पड़ेगा । यह कभी नहीं होता कि कर्म तो तुम पापमय करो और फल तुम्हें सुखमय प्राप्त हो जाय और कर्म करो पुण्य रूप और फल तुम्हें दुःखमय मिले । संसार का यह अटल नियम है कि—

जैसा बोओगे-वैसा काटोगे,
 जैसा बोलोगे-वैसा सुनोगे,
 जैसा करोगे वैसा ही भरोगे ।

आम का बीज बोने वाला आम ही पाएगा, कविठ कभी नहीं पा सकता और कविठ का बीज बोने वाला आम कभी नहीं पा सकता । कांच के अन्दर वही रूप आएगा, जैसा तुम्हारा है । इसलिए हे इन्सान ! मेरा भक्षण काला है तो परिणाम भी काला ही होगा । दीपक की न्यायोचित बात सुनकर इन्सान स्तब्ध रह गया । वह मान गया कि-

जैसा करेगे, वैसा ही भरेंगे ।



❀ गुरु भक्ति

मन मेरा तेरी ही यादों में खोया रहे,
 तन मेरा तेरे ही वादों में पिरोया रहे ।
 तेरे ही पथ पर बढता रहूँ अविरल,
 हृदय मेरा तेरे ही पादों में सोया रहे ॥



अस्तित्व की विलुप्त शक्ति को तुमने ही जगाया है,
 जीवन पथ प्रशस्त बनाकर जीना सही दिखाया है ।
 क्या कहूँ मैं तेरी गरिमा कही नहीं कुछ जाती,
 शासित हो शासक बनकर शासन खूब चमकाया है ॥

। प्रकृति भी मुखर हो उठी]

वार्ता : चलनी और सुई की

एक बार चलनी और सुई दोनों में परस्पर यों वार्ता-लाप होने लगा—अपनी शेखी बघारते हुए चलनी ने सुई को कहा वाह नन्ही-सी जान ! ऊपर में छेद और नीचे से तीक्ष्ण । चुभ जाय तो खून निकाल दे । फिर भी अपनी विशेषताओं का ढिढोरा पीट रही हो ।

चलनी की व्यंग्यात्मक बात सुनकर सुई ने अतीव शक्ति के साथ जवाब दिया—चलनी बहिन ! आज तो तुम बहुत अभिमान में आकर न मालूम क्या-क्या कहती चली जा रही हो पर कहने से पहले जरा अपने लिए कुछ सोच लिया होता तो इस प्रकार कहने का अवसर नहीं आता । यह तो ठीक है कि तुम्हारी देह बहुत चमकदार है, पर देखो तो सही तुम्हारे भीतर सैकड़ों छिद्र नजर आ रहे हैं । यही नहीं, तुम्हें कोई भी वस्तु दी जाएगी तो तुम सार-सार वस्तु को अपने भीतर से निकाल दोगी और असार-असार वस्तु रख लोगी । प्रारंभ से ही तुम्हारी इस परंपरा ने तुम्हारे विचार भी विकृत बना दिये हैं ।

बाहर से तुम भले सुन्दर दिखलाई देती हो पर भीतर में तुम्हारे सैकड़ो छिद्र है, अवगुणों का पिटारा है । पर मुझे देखो, मेरे ऊपर एक छिद्र और नीचे तीक्ष्ण भाग, विशेष अवस्था को लेकर है । छिद्र में डोरा लेकर मैं व्यक्ति के संकेतानुसार दो विछुड़े भाई-कपड़ों में प्रवेश कर उन्हें एक करती चली जाती हूँ । मेरे इस छोटे से दिखने वाले कार्य का ही परिणाम है कि आज आदमी का तन-बदन ढका हुआ है । भले मेरा देह छोटा-सा है, फिर भी विशेषता युक्त है ।

सुई की बात सुनकर चलनी की सारी हेकड़ी मिट्टी में मिल गई ।

दूसरों के विषय मे कुछ कहने से पहले स्वयं के गिरे-वान में झाँक लेना आवश्यक है ।



अथक परिश्रम को जिसने जीवन मे अपनाया है ।
चिन्तन की धारा को जिसने जीवन मे बहाया है ।
भुक जाता है मस्तक मेरा ऐसे ही के चरणों में,
समता के निर्भर मे जिसने अपने को नहलाया है ॥

लोहा, सोना कैसे बने ?

कुछ पाने के लिये कुछ देना भी होगा । हम यह चाहें कि पाने के नाम पर तो हम सब कुछ प्राप्त कर लें, पर दें कुछ नहीं, यह संभव नहीं है ।

टनों बंद लोह एक स्थान पर पड़ा था और उसी के ऊपर पारसमणि भी पड़ी हुई थी । पारसमणि को अपने ऊपर पड़ी देखकर लोहे ने कहा वाह ! क्या सुयोग मिला है । पारसमणि को संबोधित करते हुए लोहा बोला— पारसमणि ! मैंने सुना है कि तुम्हारे स्पर्श से लोहा भी सोने के रूप में बदल जाता है । कितना अच्छा हो कि तुम मुझे भी सोना बना दो । पर मैं तो यह देख रहा हूँ कि तुम मेरे ऊपर स्थित हो तो भी मेरा रूप तो लोहे का ही है, फिर तुम्हारी शक्ति का क्या असर ।

लोहे की बात सुनकर पारसमणि बोली—देखो भाई लोहे ! यह सत्य है कि मैं लोहे को स्पर्श मात्र से सोना बना देती हूँ पर स्पर्श होना चाहिए साक्षात् । अगर उसमें कोई अन्य तत्व बीच में आ जाता है तो फिर लोहा, सोना

नहीं बन सकता । अगर तुम्हें सोना बनना है तो तुम अपने ऊपर जितने भी यह बारदान-कपड़ों के आवरण हैं उन्हें हटा दो और फिर मेरी देह से थोड़ा सा स्पर्श करो । बस तुम्हारा सारा शरीर स्वर्णमय हो जाएगा ।

लोहा—पर यह तो संभव नहीं है । मैं अपने आवरण को खोलकर नग्न नहीं होना चाहता । तुम तो मुझे यों ही सोना बना दो तो अच्छा है ।

पारसमणि—यह नहीं हो सकता । कुछ पाने के लिए तो कुछ खोना ही होगा । तुम अगर यह नहीं कर सकते तो सोना भी नहीं बन सकते ।



❀ गुरु भक्ति

चेतना के ऊर्ध्व स्तर पर चल रहे हो तुम,
साधना के डगर पर बढ़ रहे हो तुम ।
बढ़ते ही जा रहे हो बढ़ते ही जा रहे हो,
उन्नति के शिखर पर बढ़ते ही जा रहे हो तुम ॥

समता ही है सच्ची आराधना तेरी,
समता ही है सच्ची साधना तेरी ।
विश्वशांति के प्रतीक हो तुम,
समता ही है सच्ची विचारणा तेरी ॥

(७१)

स्वार्थ--आदमी का

एकदा आदमी इधर-उधर भटकता हुआ घोर जंगल में पहुँच गया । जंगल की सांय-साय की आवाज से उसका तन-बदन काँपने लगा । इतने में ही चींते की गंभीर दहाड़ सुनाई दी । इस दहाड़ ने तो आदमी के पैर ही उखाड़ दिये । वह बचने के लिये इधर-उधर देखने लगा । पास ही एक वृक्ष पर मानवाकृति बन्दर बैठा था । मानव की यह दीन हालात् देखकर उसे दया आ गई । वह जोरदार चीखा और बोला -अरे नादान इन्सान ! क्या देखता है इधर-उधर । जल्दी से चढ़ जा वृक्ष पर । चीता इसी रास्ते से आ रहा है । नहीं तो वह तुझे खा जाएगा । प्राण गवा बैठोगे तुम ।

बन्दर की सांत्वना भरी आवाज से आदमी के मन में जोश उभर आया और वह विजली सी स्फूर्ति से वृक्ष पर जा चढ़ा । बन्दर के साथ आदमी को भी वृक्ष पर देखकर चीता उस वृक्ष के नीचे आ खड़ा हुआ और इन्तजार करने लगा कि यह कब नीचे उतरे और कब खाऊँ । पर बहुत समय के इन्तजार के बाद भी जब आदमी नीचे नहीं

आया तो चीते ने अक्कल से काम लिया । सोने का समय था । आदमी और बन्दर ने परस्पर निर्णय लिया । बन्दर ने कहा--कुछ समय तक तुम सो जाओ, मैं जगता रहूँगा फिर मैं सो जाऊँगा, तुम जगते रहना । आदमी ने बन्दर की बात मान ली ।

आदमी सो रहा था, बन्दर जाग रहा था । चीता बोला--बन्दर ! तुम वन के प्राणी हो और मैं भी वन्य प्राणी हूँ । आदमी से हमारा क्या सम्बन्ध ? आदमी होता भी धूर्त है । विश्वासघाती होता है । अतः मेरी बात मानों और इसे नीचे गिरा दो ।

बन्दर ने कहा--चीते ! मैं कदापि ऐसा नहीं कर सकता । मैंने ही इसकी रक्षा की है । मैं इसे नहीं गिराऊँगा । चीते के बहुत प्रयत्न करने पर भी वह तैयार नहीं हुआ । तब चीते ने बन्दर के सो जाने एवं आदमी के जगने पर आदमी को समझाना प्रारंभ किया--तुम बन्दर को नीचे गिरा दो तो मैं तुम्हें छोड़ दूँगा । अन्यथा तुम पेड़ को छोड़कर जा नहीं सकते और मैं यही खड़ा रहूँगा । नीचे आते ही तुम्हें खा जाऊँगा ।

स्वार्थी इन्सान, चीते की बातों में आ गया और बंदर को गिराने के लिए ज्यों ही उसके हाथ लगाया कि चंचल बंदर सजग हो गया । उसने देखा आदमी ही मुझे गिरा रहा है । वह तत्काल एक शाखा से दूसरी शाखा पर, एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर कूदता हुआ, आदमी से दूर चला गया और बोला--

प्रकृति भी मुखर हो उठी]

[१२१]

ऐ जगत् के श्रेष्ठ प्राणी ! नमस्कार है तुम्हें ! मैंने नही समझा था कि आदमी, इतना धूर्त, कृतघ्न और स्वार्थी होता है कि उसको जो रक्षा करता है, उसी को मारने पर उतारू हो जाता है । अब तो उस आदमी की दशा देखने लायक थी ।

सत्य है पर रक्षण को गौण कर अपने ही रक्षण में निमग्न स्वार्थी व्यक्ति कभी भी सच्ची प्रतिष्ठा प्राप्त नही कर सकता ।



संवर्तक तूफान जैसा कोई तूफान नहीं होता,
स्वयंभू समुद्र जैसा कोई समुद्र नहीं होता ।
दीनों के भरते आंसुओं को पोंछना सीखो,
परोपकार जैसा कोई उपकार नहीं होता ॥



आज धन ही- धन की दौड़ लगी है,
आज एक दूसरे की होड़ लगी है ।
आज का मानव नहीं समझ रहा है कि,
आज विनाश की ओर ही घुड़दौड़ लगी है ॥



